ॐ

द्वितीय पुष्प—

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

जैन ज्योतिर्लोक

विदुषी रत्न आर्यिका पूज्य श्री १०५ ज्ञानमती माताजी द्वारा
सन् १९६९ के शिक्षण शिविर में उपदिष्ट विषयों के आधार पर

सह संपादक
रवीन्द्रकुमार जैन
शास्त्री, बी० ए०
टिकैतनगर (बाराबंकी, उ० प्र०)

लेखक एवं संपादक
मोतीचंद जैन सर्राफ
शास्त्री, न्यायतीर्थ
(आ० श्री धर्मसागर जी संघस्थ)

प्रकाशक

जैन त्रिलोक शोध संस्थान

वीर विज्ञान विहार,
नजफ़गढ़, नई दिल्ली-४३

१५ फरवरी, १९७३ मूल्य १०

* सम्यक श्रद्धान *

एवं

समीचीन ज्ञान प्राप्ति हेतु भगवान महावीर स्वामी

के २५०० वें निर्वाण महोत्सव

के उपलक्ष में

प्रकाशित

माघ शुक्ला १३ वी. सं. २०२६

श्री वीर निर्वाण सं० २४६६

द्वितीया वृत्ति

२५०० प्रति

मुद्रक :

एस. नारायण एण्ड संस

प्रिन्टिंग प्रेस

पहाड़ी धीरज दिल्ली-६

फोन: ५१३६६८

चारित्र चक्रवर्ती

प० पू० १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज

जन्म—	क्षुल्लक दीक्षा—	ऐलक दीक्षा—	मुनि दीक्षा—
भोजग्राम	कागनोली (महा०)	श्रीगिरनारजी	यरनाल (महा०
(कोल्हापुर, महाराष्ट्र)	वि०सं० १९७०	वि.सं. १९७४	वि.सं. १९७६
वि.स. १९२९ आ. कृ. ६	ज्येष्ठ शु० १३		फाल्गुन शु. १३

क्षुल्लक एवं मुनि दीक्षा गुरु—मुनि सिद्धसागरजी

आचार्यपद—आश्विन शुक्ला ११ वि०सं० १९८१—समडोली (महाराष्ट्र)

स्वर्गवास—भाद्रवा शु० २ वि०सं० २०१२ कुंथलगिरी सिद्धक्षेत्र

* श्री वीतरागाय नमः *

रचयित्री : विदुषी रत्न पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

(प० पू० १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज संघस्था)

❀ मंगल स्तुति ❀

जिनने तीन लोक त्रैकालिक सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी युगपत सबको जान लिया ॥
रागद्वेष जर मरण भयावह नहिं जिनका संस्पर्श करें।
अक्षय सुख पथ के वे नेता, जग में मंगल सदा करें ॥१॥

चन्द्र किरण चन्दन गंगा जल से भी जो शीतल वाणी।
जन्म मरण भय रोग निवारण करने में है कुशलानी ॥
सप्तभंग युत स्याद्वाद मय, गंगा जगत पवित्र करें।
सबकी पाप धूली को धोकर, जग में मंगल नित्य करे ।२।

विषय वासना रहित निरंबर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवों को अभय दान दे निर्भय पद को प्राप्त किया।
भव समुद्र में पतित जनों को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मम हृदय विराजो सब जन को मंगल दाता ।३।

अनंत भव के अगणित दुःख से जो जन का उद्धार करे।
इन्द्रिय सुख देकर, शिव सुख में ले जाकर जो शीघ्र धरें ॥
धर्म वही है तीन रत्नमय त्रिभुवन की सम्पत्ति देवे।
उसके आश्रय से सब जन को भव-भव में मंगल होवे ॥४॥

श्री गुरु का उपदेश ग्रहण कर नित्य हृदय में धारें हम।
क्रोध मान मायादिक तजकर विद्या का फल पावें हम ॥
सबसे मैत्री, दया, क्षमा हो सबसे वत्सल भाव रहे।
सम्यक् 'ज्ञानमति' प्रगटित हो सकल अमंगल दूर रहे ।५।

प्राक्कथन

न सम्यक्त्व समं किंचित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व—समं नान्यत् तनूभृतां

तीनों लोक में और तीनों कालों में इस संसारी प्राणी को सम्यक्त्व के समान हितकारी (कल्याणकारी) कोई भी वस्तु नहीं है और मिथ्यात्व के सदृश अकल्याणकारी कोई भी पदार्थ नहीं है। तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व रहित अवस्था के कारण ही यह जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। सम्यक्त्व रूपी रत्न मिल जाने के बाद इस जीव का संसार सीमित (अर्द्ध पुद्गल परावर्तन मात्र) रह जाता है।

सम्यक्त्व के होने पर जीव में ४ गुण प्रगट होते हैं। (१) प्रशम (२) संवेग (३) अनुकम्पा (४) आस्तिक्य। कषायों की मंदता को प्रशम भाव कहते हैं। संसार, शरीर एवं भोगों से विरक्त होना संवेग है। प्राणीमात्र के हित की भावना अनुकम्पा है। जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित जिनधर्म, जिनवाणी में निःशंक होकर श्रद्धान रखना आस्तिक्य है। जैसे:—जिनेश्वर ने स्वर्ग, नरक, सुमेरु आदि का वर्णन किया है। हम इन स्थानों को वर्तमान में प्रत्यक्ष नहीं देख सकते किन्तु फिर भी आस्तिक्य भावों से उनकी वाणी पर अटूट श्रद्धा होने से दिव्यध्वनि प्रणीत पदार्थों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। क्योंकि जिनेन्द्र भगवान ने घातिया कर्मों के अभाव से प्रगट केवलज्ञान के द्वारा तीनों

लोकों का स्वरूप बतलाया है। दृष्टि एवं तर्क के अगोचर होते हुए भी भगवान की वाणी पर श्रद्धा रखना इसी का नाम सम्यक्त्व है।

आज चन्द्रलोक की यात्रा के विषय में थोड़ा विचार करके देखा जाये तो हमारे बहुत से जैन बन्धुओं की क्या स्थिति हो रही है। अमरीकी चन्द्रमा पर उतर गये एवं वहाँ की मिट्टी ले आये हैं। यह सब अमेरिका के लोगों ने टेलीविजन पर प्रत्यक्ष देखा है। आगे और भी उनके विशेष प्रयास जारी हैं। कई प्रकार की वैज्ञानिक कल्पनाएं छापी जा रही हैं। यह भी सूचित किया गया कि वहाँ आम जनता के लोग भी (लाख रुपये का) टिकट लेकर जा सकेंगे।

प्रिय बन्धुओं! न तो सभी लोगों ने टेलीविजन में उन्हें इसी चन्द्र पर उतरते हुए देखा है और न वहाँ की मिट्टी ही सब लोगों को मिली है और न ही सभी लाखों का टिकट लेकर वहाँ जा सकते हैं। मात्र आगम और पूर्वाचार्यों के प्रति तरह-तरह की अश्रद्धा एवं आशंका उत्पन्न कर-करके अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त हुए सम्यक्त्व रूपी रत्न को भी व्यर्थ में गवां रहे हैं।

इस प्रकार 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' वाली उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। अतः इतने मात्र से ही अपनी श्रद्धा को न बिगाड़ें। अभी तो आगे इस सम्बन्ध में और भी खोजें होती रहेंगी।

अभी तो यह सोचने की बात है कि जब यहाँ (पृथ्वी) से ३१,६०,००० मील की ऊंचाई पर सबसे पहले ताराओं के विमान हैं, ३२,००,००० मील ऊपर सूर्य के विमान हैं तथा इन

सबसे ऊपर अर्थात् ३५,२०,००० मील ऊंचे चन्द्रमा के विमान हैं जबकि अमेरिका द्वारा छोड़ा गया राकेट अपोलो-११ तो मात्र २ लाख ८०,००० मील ही गया है तथा चन्द्र विमानों के गमन की गति इतनी तेज (१ मिनट में ४,२२,७७७$\frac{३१}{१६३}$ मील) है कि उस पर पहुंच पाना ही हम लोगों के लिए अति दुर्लभ है।

इस तरह इन सबको देखते हुए तो ऐसा अनुमान होता है कि वे लोग विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों पर तो कह नहीं उतरे हैं और वहीं से मिट्टी लाये हैं।

चन्द्रमा का विमान ३६७२ मील का है। वहाँ पर देवों के ही आवास हैं। वहाँ की सर्वत्र रचना रत्नमयी है। वहाँ पर मिट्टी, कंकड़, पत्थर का क्या काम है।

टेलीविजन पर चन्द्रमा पूर्णिमा या अमावस्या के दिन मध्याह्न काल में यदि देख कर बता सकें तो माना जा सकता है कि चन्द्रमा पर पहुंचे, नहीं तो सब बातें निरर्थक व भ्रमोत्पादक हैं।

अमेरिकन समाचारों के अनुसार द्वितीय आषाढ़ के शुक्लपक्ष की सप्तमी को (भारतीय समयानुसार) रात्रि के १–३० पर चन्द्र धरातल पर उतरे। इसका मतलब यह हुआ कि उस समय चन्द्रमा राहु के ध्वजदण्ड से ८ कला आच्छादित था तथा तुला राशि में प्रविष्ट था एवं चित्रानक्षत्र था। अर्थात् चन्द्र उस समय अस्त हो चुका था। यदि चन्द्रमा अस्त होने पर भी टेलीविजन पर देख सकें तो बतलाएँ। हम यह निश्चय पूर्वक कहते हैं कि अस्त हुआ चन्द्र कभी दिखाई नहीं देगा। इसके विपरीत वैज्ञानिकों ने तो राकेट को चन्द्रमा पर उतरते हुए देखा। परन्तु

जब चन्द्र ही नहीं दिखाई दे सकता तो राकेट-मानव को चन्द्र धरातल पर उतरते देखा यह कथन सर्वथा असत्य एवं भ्रामक है।

समाचार पत्रों में एक बात और यह पढ़ने में आई कि प्रयोग से जाना गया है कि चन्द्रमा की चट्टानें दो अरब से साढ़े चार अरब वर्ष पुरानी हैं यह मत अमेरिका के न्यूयार्क विश्वविद्यालय के चार बड़े वैज्ञानिकों का है। परन्तु बारीकी से अन्वेषण करने पर हजारों या दो चार लाख वर्ष पुरानी हो सकती हैं। लेकिन यह कहना कि वे ४॥ अरब वर्ष पुरानी हैं इस प्रकार के निर्णय में क्या प्रमाण है ? इस तरह अनुमान से ही वैज्ञानिक लोग बहुत सी बातों को वास्तविक रूप में प्रगट कर देते हैं।

एक बार नवभारत टाइम्स में समाचार पढ़ने में आये कि एक पुराना हाथी दांत मिला है जो कि ५० लाख वर्ष पुराना है। जबकि यह हजारों वर्ष पुराना भी हो सकता है ऐसे कितने ही वैज्ञानिकों के अनुमान असत्य की श्रेणी में गर्भित हो जाते हैं।

प्राचीन पाश्चात्य विद्वान पृथ्वी को केवल ८४ हजार वर्ग मील या उससे कुछ अधिक मानते थे लेकिन उसकी खोज होने पर अब वह प्रमाण असत्य हो गया। पहले अमेरिका आदि का सद्भाव नहीं था। पृथ्वी को उतनी ही मानते थे। अब धीरे-धीरे नई खोज से नये देश मिले जिससे पृथ्वी बढ़ गई। पाश्चात्य भू-वेत्ता पृथ्वी को नारंगी के आकार में गोल एवं घूमती हुई मानते थे, परन्तु इसके विपरीत अमेरिका के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक विद्वान ने पूर्व मत का खण्डन करते हुए लिखा था कि पृथ्वी नारंगी के समान गोल नहीं है और सूर्य चन्द्र स्थिर नहीं हैं वे चलते फिरते रहते हैं। इस प्रकार का एक लेख लगभग २५–३० वर्ष पहले समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है।

जैन सिद्धान्त ने ऐसी खोजों पर प्रकाश इसलिए नहीं डाला कि महर्षियों ने तो मुख्य रूप से मोक्ष प्राप्ति के साधन एवं आत्मा के विकास पर ही प्रकाश डाला है। ये सारे वर्तमान के वैज्ञानिक भौतिकवादी खोजपूर्ण साधन यहीं पड़े रह जावेंगे। इस वैज्ञानिक ज्ञान से आत्मा को सद्गति मिलने वाली नहीं है। वैसे सर्वज्ञ कथित वाणी से प्ररूपित इन जड़ पदार्थों का अवधि-ज्ञानी आदि ऋषियों ने एवं श्रुतकेवलियों ने द्वादशांग श्रुतज्ञान से जानकर स्वरूप निरूपण अवश्य किया है।

वर्तमान में मानव भोग विलासों में समय को व्यर्थ गवां रहे हैं। धार्मिक अध्ययन मे शून्य होने के कारण ही आज वास्त-विकता से अनभिज्ञ हो रहे हैं। यही कारण है कि 'चन्द्र यात्रा' के बारे में तरह-तरह की चर्चायें हो रही हैं। जबकि हमारे जैनाचार्यों ने लोक विभाग, त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि महान् ग्रन्थों में तीनों लोकों की सारी रचना तथा व्यवस्था के बारे में पूर्णतया बारीकी से स्पष्टीकरण किया है। लेकिन इस आर्थिक एवं भौतिक युग में किसी को इतना अवसर ही नहीं मिलता दिखाई देता जबकि वे अपनी निधि को देख सकें। आज हम लोग दूसरों की खोज पर मुंह ताकते रहते हैं।

इसी बात को ध्यान में रखकर जन साधारण के हितार्थ सौर्य मंडल के बारे में जैन आम्नायानुसार इसका ज्ञान कराने के लिए पू० विदुषी आर्यिका १०५ श्री ज्ञानमती माताजी ने लोगों के आग्रह पर सन् १९६९ के जयपुर, चातुर्मास के अन्त-र्गत १५ दिन के लिए एक शिक्षण कक्षा चलाई थी, जिसमें स्त्री पुरुषों तथा बालकों ने बहुत ही रुचि पूर्वक भाग लेकर अध्ययन

करके नोट्स भी उतारे थे। तभी से बहुतों की यह इच्छा रही कि यदि यह विषय पुस्तक रूप में छपकर तैयार हो जावे तो आबाल गोपाल इससे लाभान्वित हो सकेंगे। जैन भौगोलिक तत्त्वों को सरलता पूर्वक समझ सकेंगे।

अतः सभी की भावना एवं आग्रह को लक्ष्य में रखकर मैंने उन्हीं नोट्स के आधार पर यह पुस्तक लिखकर तैयार की है। संभवतः इसमें कई त्रुटियाँ भी रह गई होंगी। अतः पाठकगण सुधार कर पढ़ें और सत्यता का स्वयं निर्णय करें।

पूज्य माताजी ने अस्वस्थ अवस्था होते हुए भी अथक परिश्रम करके, अमूल्य समय देकर जो नोट्स लिखवाये थे उसी के आधार पर से बहुत से ग्रन्थों के साररूप यह छोटी सी पुस्तक तैयार की गई है। अतः हम माताजी के अत्यन्त आभारी हैं।

विशेषः---पूज्य माताजी कई स्थानों पर उपदेश के अन्तर्गत अकृत्रिम चैत्यालयों की रचना को लेकर त्रिलोक रचना में जैन भूगोल के आधार पर मध्य लोक में पृथ्वी कितनी बड़ी है? छह खण्ड की रचना कैसी है? उसमें आर्य खण्ड कितना बड़ा है? उसकी व्यवस्था कैसी क्या है? सुमेरु पर्वत आदि कहाँ किस रूप में है? इत्यादि विषय पर बहुत ही रोचक ढंग से प्रकाश डालती रहती हैं।

जब आप अपने संघ सहित शोलापुर चातुर्मास के उपरांत यात्रा करती हुई श्रीसिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट दर्शनार्थ पधारीं तब सनावद निवासियों के आग्रह पर सन् १९६७ का चातुर्मास वहीं स्थापित किया। तब वहाँ पर भी उपदेश के अन्तर्गत बहुत

सुन्दर ढंग से अकृत्रिम चैत्यालयों की परोक्ष वन्दना कराते हुए उपरोक्त जैन भूगोल पर विस्तृत प्रकाश डाला था।

तभी से हमारी यह भावना थी कि यदि सुन्दर बाग-बगीचों एवं द्वीप समुद्रों सहित खुले मैदान में जैन मतानुसार तद्रूप भौगोलिक रचना दर्शाई जावे तो समस्त जैनाजैन जनता को जम्बूद्वीप सुमेरु पर्वत आदि की रचना साकार रूप में होने से समझना सरल हो जावे। ऐसी रचना अपने प्रकार की एक अद्वितीय एवं दर्शनीय स्थल के रूप में देश-विदेश के लोगों के आकर्षण का केन्द्र होगी।

परम सौभाग्य की बात है कि उक्त रचनात्मक कार्य को क्रियान्वित करने हेतु विदुषी रत्न पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी की पुनीत प्रेरणाओं से दिल्ली में 'जैन त्रिलोक शोध-संस्थान' की मंगल स्थापना की गई है।

संस्थान के उद्देश्यों के अन्तर्गत प्रमुख रूप से भगवान् महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाण महोत्सव की स्मृति को चिर स्थायी बनाने के लिए स्मारक रूप में जैन भूगोल के अन्तर्गत जम्बूद्वीप की वृहत् रचना का कार्य प्रारम्भ हो गया है।

संस्थान के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु दि० जैन समाज नजफगढ़ दिल्ली ने ५० हजार वर्ग गज भूमि प्रदान की है।

यहाँ पर ग्रन्थ संग्रहालय के लिए एक विशाल एवं नवीनतम साधनों से युक्त अतीव आकर्षक भवन भी होगा। जिसमें सभी प्रकार का जैन साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सकेगा। रचना कार्य कुशल इंजीनियरों की देख-रेख में सुचारु रूप से चल रहा है।

इस पुस्तक को पढ़कर जैन ज्योतिर्लोक को समझें। विशेष समझने के लिए लोक विभाग इत्यादि ग्रन्थों का स्वाध्याय करें एवं अपने सम्यक्त्व को दृढ़ बनावें। यही मेरी शुभ कामना है।

मोतीचन्द अमोलकचन्दसा जैन सर्राफ
शास्त्री, न्यायतीर्थ
मनावद (मध्यप्रदेश)
(आचार्य श्री धर्मसागरजी संघस्थ)

नजफगढ़, दिल्ली-४३
बसन्तपंचमी १९७३

प्रस्तावना

विशालग्रहलोकस्य भूलोकस्य तथैव च।
नित्यानां जिनधाम्नांच वर्णनं कृतमत्र सत्॥
माता ज्ञानवती श्लाघ्या माता जिनमतिस्तथा
उभयोर्पुण्यकर्मेदं धन्यवादोचितं सदा॥

प्रस्तुत पुस्तिका अपने नाम से ही अर्थ की सार्थकता दिखलाती हुई दृष्टिगत होती है। ग्रन्थकर्ता ने ज्योतिर्लोक नाम से इसका नामकरण किया है किन्तु इसमें न केवल ज्योतिर्लोक का ही वर्णन है अपितु मध्यलोक के द्वीप, समुद्रों, नदी, पहाड़ों एवं क्षेत्र विभागों का भी वर्णन है और ये ही नहीं इसमें उन अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है जो कि मध्य लोक में ४५८ की संख्या में सदा शाश्वत विद्यमान हैं।

आधुनिक युग में चन्द्र लोक यात्रा का डिडिम घोष चतुर्दिक् सुनाई पड़ता है। वैज्ञानिकों ने वहां जाकर वहां के वायु मण्डल का, वहां की मिट्टी का और वहां पर होने वाली जलवायु का भी अध्ययन किया है। यह भी निश्चित हो चुका है कि चन्द्र-लोक में मानव का जाना संभव है और कतिपय सामग्री के सद्-भाव में मानव वहां जीवित भी रह सकता है।

किन्तु जैनाचार्यों ने इस धारणा को सही रूप नहीं दिया है। उनका कहना है कि चाहे आधुनिक वैज्ञानिक अपने आप को

प० पू० १०८ आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज

जन्म	मुनि दीक्षा	स्वर्गवास
वीरगांव (महाराष्ट्र)	वि० सं० १९८०	खानिया, जयपुर
वि० सं० १९३३	आश्विन शुक्ला ११	वि० सं० २०१४
आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा	समडोली (सांगली, महाराष्ट्र)	आश्विन कृष्णा ३०

क्षुल्लक, ऐलक एवं मुनि दीक्षा गुरु—चा० च० १०८ आचार्य श्रीशान्तिसागरजी महाराज

चन्द्र लोक यात्रा सफल समझ लें किन्तु अभी वे असली चन्द्रमा पर नहीं पहुंच पाये हैं। आकाश में अनेकों ग्रह नक्षत्र ही नहीं इसी प्रकार के अन्य भ्रमणशील पुद्गल स्कंध भी शास्त्रों में बतलाये गये हैं। हो सकता है आधुनिक वैज्ञानिक भी ऐसे ही किसी पुद्गल स्कंध पर पहुंच गये हों। जैनवाङ्मय के अनुसार उनका चन्द्रमा तक पहुंचना संभव नहीं है।

पुस्तक निर्माता ने इसी बात को दिखाने के लिये इस 'ज्योतिर्लोक' नाम की पुस्तक का सृजन किया है। सौर मण्डल में कितने ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र और तारे हैं उनकी संख्या मय ऊंचाई व विस्तार के आधुनिक माप के माध्यम से दी है। पाठक उसको जान कर अपना भ्रम मिटा सकते हैं। लेखक स्वयं प्रत्यक्ष दृष्टा नहीं है किन्तु आगम चक्षु से वह जितना देख सका है उतना देखा है, इसी के आधार पर अनेकों ग्रन्थों का मंथन कर सारभूत तत्त्व निकालने का प्रयत्न भी कर सका है। हमें लेखक के श्रम की सराहना करनी चाहिये।

जिन भगवान सर्वज्ञ होते हैं अन्यथावादी नहीं होते, अतः उनके द्वारा कथित तत्त्व भी अन्यथा नहीं हो सकते और यह बात सत्य भी है कि जो जो वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं वे ऐसे ही होते हैं। अस्तु हमें लेखक की मान्यता का आदर करते हुए उसकी रचना का स्वागत करना चाहिये।

ग्रन्थकार ने स्वयं अपना कुछ न लिखकर पूर्वाचार्यों का ही सहारा लिया है। त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, लोक विभाग, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थ ही इस पुस्तक की आधार शिला हैं।

जिनागम में श्रद्धा रखने वाले भव्य पुरुष अपने उपयोग की स्थिरता करने वाली और संस्थान विचय धर्म ध्यान में कार्यकारी होने वाली इस पुस्तक को रुचि से पढ़ेंगे और अन्य पाठकों को भी धर्म लाभ लेने में सहयोग प्रदान करेंगे।

इस पुस्तक में विशेषत: तीन विषय रखे गये हैं—

१. ज्योतिर्लोक २. भूलोक और ३. अकृत्रिम चैत्यालय।

१. ज्योतिर्लोक—इसमें पृथ्वी तल से ७९० योजन से लेकर ९०० योजन तक की ऊंचाई अर्थात् ११० योजन में स्थित ज्योतिषी देवों के विमानों को बतलाया है। इन विमानों में सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे सब अपने परिवारों के ध्रुवों को छोड़ कर अढ़ाई द्वीप में तो सुमेरु पर्वत के चारों ओर परिभ्रमण करते हुए दिखाये गये हैं और इसके बाहर वाले अवस्थित दिखाये गये हैं। पुस्तक में इन्हीं विमानों की स्थित ऊंचाई और विस्तार का ठीक प्रमाण ग्रन्थान्तरों से देख शोध कर सही लिखा है। सूर्य और चन्द्र विमानों में जिन चैत्यालयों का स्वरूप भी यथावत् संक्षिप्त रूप से बताया गया है। किस देव की कितनी स्थिति है इसे भी पुस्तक में खोला गया है और किस-किस प्रकार उनका भ्रमण है उस पर भी पूर्णप्रकाश डाला गया है। सूर्य एवं चन्द्रमा जिन १८४ वीथियों में होकर गमन करते हैं उनका प्रमाण शास्त्रोक्त विधि से सही निकाल कर लिखा गया है। जम्बूद्वीप में होने वाले दो सूर्य और दो चन्द्रमा किस प्रकार सुमेरु के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं, उनकी गतियों का माप आधुनिक मान्य माप के आधार पर सही निकाला गया है। रात दिन का होना, उनका बड़ा छोटा होना, ऋतुओं का

होना, ग्रहण का होना, सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन का होना इत्यादि सभी खगोल सम्बन्धी तत्त्वों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है।

२. **भूलोक**—इस प्रकरण में पुस्तक निर्माता ने जम्बूद्वीप आदि द्वीपों और लवण समुद्रादि समुद्रों का संक्षिप्त परिचय दिया है। इनमें तेरह द्वीप तक के द्वीपों और समुद्रों पर ही विशेष प्रकाश डाला है क्योंकि इन्हीं तेरह द्वीप तक अकृत्रिम चैत्यालय पाये जाते हैं। अढ़ाई द्वीप के द्वीप और समुद्रों का विशेष विवरण दिया गया है। कितनी भोग भूमियां और कितनी कर्म भूमियां अढ़ाई द्वीप में हैं उनका संक्षिप्त विवरण और इन क्षेत्रों में होने वाली गंगादिक नदियों का और इनके परिमाण आदि का वर्णन भी पुस्तक में भली प्रकार किया है।

३. **अकृत्रिम चैत्यालय**—पुस्तक में अकृत्रिम चैत्यालयों का स्वरूप भी दिखलाया है। जम्बूद्वीप में ७८ और कुल मध्य लोक में ४५८ चैत्यालय कहाँ-कहाँ है, इनको पृथक-पृथक बतला कर चैत्यालयों तथा प्रतिमाओं का स्वरूप भी संक्षिप्त रूप से समझाया गया है।

इस प्रकार पुस्तक को आद्योपान्त देखने से पता चलता है कि लेखक का उपक्रम सराहनीय एवं प्रयोजन भूत है हमें जिनेन्द्र के वचनों पर विश्वास करके आगम प्रमाण को विशेष महत्त्व देना चाहिये क्योंकि इस युग में प्रत्यक्ष दृष्टा सर्वज्ञ का तो अभाव है अतः उनके अभाव में उनकी वाणी को ही प्रमाण मानकर उसमें आस्था रखनी चाहिये।

इन शब्दों के साथ में पुस्तक निर्माता के ज्ञान विज्ञान एवं परिश्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूं और पूज्या ज्ञानमती माताजी एवं जिनमतीजी माताजी के प्रति विशेषश्रद्धा रखता हुआ इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर अपना अहोभाग्य समझता हूं।

गुलाबचन्द छाबडा
जैनदर्शनाचार्य
अध्यक्ष
श्री दि० जैन संस्कृत कालेज,
जयपुर

लेखक के प्रति दो शब्द

प्रस्तुत 'जैनज्योतिर्लोक' नामकपुस्तक समयोचित एवं सारगर्भित है। विभिन्न ग्रन्थसागर का मन्थन करके गृह नक्षत्रों की व्यवस्था सम्बन्धी प्रकरण तथा भूलोक एवं अकृत्रिम चैत्यालयों का सुन्दररीत्या विवरण संकलित किया गया है।

पुस्तक के आद्योपान्त पठन से वैज्ञानिकों की खोज की वास्तविकता का अन्दाज भली प्रकार लगाया जा सकता है कि वे लोग चन्द्रयात्रा में कहां तक सफलीभूत हुए हैं तथा उनका अन्वेषण कितने अंशों में सत्य है।

पुस्तक के लेखक श्री मोतीचन्द जी सराफ मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध शहर इन्दौर के निकट सनावद नगर के निवासी हैं। आपके पिताजी का नाम श्री अमोलकचन्द जी है। वास्तव में आप के पिता श्री अमोलकचन्द जी ने अपने नाम के अनुरूप ही एक अमोलक—अमूल्य निधि प्राप्त की। उस दिन घर में खुशी की लहर दौड़ गयी थी क्योंकि मां रूपांवाई की कोख से सर्व प्रथम ही पुत्र की प्राप्ति हुई थी। मां रूपांवाई ने भी अपने नाम की सार्थकता पुत्र में प्रगट कर दी। क्योंकि 'रूपांवाई' इस नाम के अनुरूप पुत्र में रूप की कमी नहीं थी। इस प्रकार माता-पिता ने पुत्र के गुणों को देखकर ही पुत्र का नाम मोतीचन्द रखा।

आपके वाद आपकी मां ने किरणवाई, इन्दरचन्द, प्रकाश चन्द एवं अरुण कुमार को जन्म दिया। इस प्रकार आप की

मां ने ५ सन्तानों को जन्म दिया। माँ रूपांबाई से पूर्व आपके पिताजी की प्रथम पत्नी से दो पुत्रियों का जन्म हुआ था जिनका नाम गुलाबबाई एवं चतुरमणी बाई है। इस प्रकार आप के ३ भाई एवं ३ बहिन हैं।

आपके भाई श्री इन्दरचन्द का विवाह सन् १९७० में हो चुका है। आपके यहां सोने-चांदी का व्यापार होता है।

धनाढ्य परिवार होने से सभी साधन उपलब्ध होते हुए भी वैराग्यपूर्ण भावनाओं के कारण, बिना किसी की प्रेरणा के, १८ वर्ष की अल्पायु में सन् १९५८ में आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। व्रत लेने के बाद लगभग १० वर्ष तक घर रह कर बड़ी ही कुशलता से व्यापार करते हुए धर्माराधन में संलग्न रहकर सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में हमेशा आगे रहे हैं।

पुण्योदय से सन् १९६७ में पूज्य विदुषीरत्न आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी का सनावद में चतुर्मास हुआ। चातुर्मासोपरान्त पूज्य माता जी ने आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के संघ में पुनः पदार्पण किया।

पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं वक्तृत्व से प्रभावित होकर आप भी संघ में अध्ययनार्थ रहने लगे। कुशाग्र बुद्धि होने से अल्प समय में ही पूज्य माताजी से अध्ययन करके आपने शास्त्री एवं बंगीय सं. शि. परिषद की न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है।

समय-समय पर आप घर भी जाते रहते हैं। आपकी ही प्रेरणा से आपके पिताजी ने २५ हजार रु० का दान निकाल कर एक ट्रस्ट की स्थापना २ वर्ष पूर्व की है। उस ट्रस्ट से सनावद में ही दो धार्मिक पाठशालायें चल रही हैं।

आपने पंचमेरु व्रत के उद्यापन के उपलक्ष्य में ४ फुट उत्तंग अत्यंत मनोज्ञ, भगवान बाहुबलि की प्रतिमा भी सनावद के दि० जैन मन्दिर में २ वर्ष पूर्व विराजमान की है।

अभी पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा संस्थापित 'जैन त्रिलोक शोध संस्थान' के अन्तर्गत निर्माण कार्य के प्रारम्भ में आपने २५ हजार रुपये की राशि दान में घोषित की है। इसके अलावा भी आप एवं आपके पिताजी आहार दान आदि के निमित्त समय-समय पर धन-राशि निकाला करते हैं।

शास्त्री एवं न्यायतीर्थ के अलावा आपने पूज्य माताजी से जैन भूगोल का बड़ा ही गहन अध्ययन प्राप्त किया है। इस प्रकार आप पाँच वर्ष से संघ की सेवा में रह कर व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त, भूगोल, अध्यात्म आदि के अनेक ग्रन्थों का अध्ययन प्राप्त कर रहे हैं।

आपके जीवन वृत्त का वर्णन अधिक न करके मैं इतना तो अवश्य कहूंगा कि आप में वात्सल्य एवं सहिष्णुता जैसे अनुकरणीय गुण विद्यमान हैं।

ऐसी महान आत्माओं के आदर्श जीवन से हम सबको हमेशा सन्मार्ग दर्शन मिलता रहे यही हमारी इच्छा है।

रवीन्द्र कुमार जैन शास्त्री बी०ए०
टिकैत नगर निवासी
(जिला—बाराबंकी, उ. प्र.)

परम हितैषिणी—सच्ची माता

विशिष्ट विदुषीरत्न, पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती जी

लेखक—(संघस्थ) मोती चंद जैन सर्राफ, 'शास्त्री', 'न्यायतीर्थ'

भारतवर्ष की इस पावन वसुन्धरा ने अनादिकाल से ही ऐसे नर एवं नारी रत्नों को जन्म दिया है जिनसे यह भूमि भव्यात्माओं की जन्म-स्थली एवं मुक्ति-स्थली बन गई है। इस अथाह संसार में उन्हीं नर-नारियों के जन्म लेने की सार्थकता है जिन्होंने मानव जीवन की वास्तविक उपयोगिता को सच्चे अर्थों में स्वीकार कर संसार को असार जानकर यथा सम्भव इसका परित्याग कर मुक्ति पथ का अवलंबन लिया है। मोही, अज्ञानी संसारी जीवों ने निर्विकार, शान्त स्वभाव को समझने के लिये वीतराग, सर्वज्ञ एवं हितोपदेशी देव, वीतराग निर्ग्रन्थ गुरु एवं उनकी पवित्र स्याद्वाद वाणी का अवलंबन लिया है।

निर्ग्रन्थ मुनि साक्षात् रत्नत्रय के प्रतीक हैं और जो भव्य-प्राणी मुक्ति के इच्छुक रहे हैं उन्होंने सदैव ऐसे शांत, धीर-वीर, निर्विकार निर्ग्रन्थ साधुओं की शरण में जाकर वैराग्य की कामना की है। उन्हीं में से एक वीरात्मा हैं प्रखर प्रवक्त्री, परम विदुषीरत्न, विश्ववंद्य, ज्ञानमूर्ति पू० आर्यिका **श्री ज्ञानमती माताजी** जिन्होंने स्व-पर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होते हुए अपने जीवन का बहुभाग भव्यप्राणियों के हितार्थ, विपुल आपत्तियों का दृढ़ता से सामना करते हुये बिताया है।

पूज्य माताजी का जन्म एक ऐसे जैन परिवार में हुआ जो सदा से धर्मनिष्ठ रहा है। आपकी पुण्य जन्मस्थली टिकैतनगर [लखनऊ निकटस्थ, जिला बाराबंकी उ० प्र०] है। यह वह भाग्यशाली नगरी है जिसे अनंत तीर्थंकरों की जन्मभूमि अयोध्या का सामीप्य प्राप्त है। जहाँ आपने गोयल गोत्रीय अग्रवाल जैन परिवार के श्रेष्ठी श्री छोटेलालजी की ध. प. श्रीमति मोहिनी देवी की पवित्र कोख से प्रथम संतान के रूप में जन्म लिया। ईस्वी सन् १९३४ तदनुसार वि. सं. १९९१ के आसोज मास के शुक्ल पक्ष की उस रात्रि ने आपको प्रकट किया जबकि चन्द्रमा पूर्ण रूप से विकसित होकर शुभ्र ज्योत्सना से सम्पूर्ण आलोक को प्रकाशित करते हुये अपने-आपको प्रफुल्लित कर सर्वत्र आनन्द वृष्टिकर रहा था। वर्ष भर में एक ही बार आने वाले उस दिन को अखिल भारत **शरदपूर्णिमा** के नाम से जानता है।

वैसे कन्या का जन्म साधारणतया घर में कुछ समय क्षोभ उत्पन्न कर देता है किन्तु विश्व में अनादिकाल से पुरुषों के समान नारियों ने भी महान कार्य कर धराको गौरवान्वित किया है, बल्कि यों भी कह सकते हैं कि सतियों के सतीत्व के बल पर ही धर्म की परम्परा अक्षुण्ण बनी हुई है। भारतीय परम्परा में वैदिक संस्कृति ने कन्या को १४ रत्नों में से एक रत्न माना है।

कौन जानता था कि छोटे गांव में जन्म लेने वाली—माता मोहिनी देवी का प्रथम संतान के रूप में यह "कन्या रत्न" भविष्य में चारित्र नौका पर आरूढ़ होकर सारे देश में जैन धर्म की ध्वजा लहरायेगी। स्वयं भी संसार समुद्र से पार होगी एवं औरों को भी पार उतारेगी।

माता मोहिनी देवी ने बड़े प्रेम से पुत्री का नाम 'मैना' रखा, किन्तु उसे मालूम नहीं था कि वास्तव में यह मैना एकदिन गृह

कारावास (पिंजड़े) से उड़कर स्वतन्त्र विचरण करेगी। आपने १८ वर्ष तक घर में रहते हुए गृह कार्यों में निपुणता प्राप्त की। प्राथमिक शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक ज्ञान भी अर्जित किया। ११ वर्ष की आयु में अकलंक-निकलंक नाटक देखा था जिसकी अमिट छाप आपके जीवन पर पड़ी। विवाह की चर्चा के समय अकलंक ने जो बात कही थी कि "कीचड़ में पैर रखकर धोने की अपेक्षा पैर नहीं रखना ही श्रेयस्कर है" तदनुसार आपने भी आजीवन ब्रह्मचर्य मे रहने का संकल्प कर लिया। उस समय का निर्णय दृढ़तापूर्वक निभाया।

१८ वर्ष की आयु में समय पाकर बाराबंकी में विराजमान आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज के दर्शनार्थ लघुभ्राता श्री कैलाशचन्द जी के साथ गुरुवर की चरण शरण में आकर सदा-सदा के लिये गृह परित्याग कर दिया।

लगभग ६ माह संघ में रहने के अनन्तर मिती चैत्र कृष्ण १/२००९ को श्री महावीर जी में आ. रत्न श्री देशभूषण जी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा धारण कर ली। उन दिनों किसी अल्प वयस्क कन्या द्वारा दीक्षा लेने का वह प्रथम अवसर था। इसी कारण आपके अपार साहस को देखते हुये आचार्य श्री ने आपका नाम '**वीरमति**' रखा।

सौभाग्य से आपका प्रथम चातुर्मास आचार्य संघ सहित जन्मभूमि टिकैतनगर में ही हुआ। तदनन्तर २ वर्ष पश्चात् स्वयं की अरुचि एवं चा. च. आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की सल्लेखना के पूर्व दर्शनार्थ जाने पर उनकी प्रेरणा से रेल, मोटर आदि वाहनों में बैठने का त्याग करके प. पू. आचार्य प्रवर श्री वीरसागरजी महाराज के पास आकर वि. सं. २०१३

में शुभ मिति बैसाख कृष्ण २ को माधोराजपुरा (राज.) में स्त्रियोत्कृष्ट आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। आपकी बुद्धि की प्रखरता को देखते हुए गुरुवर ने आपका नाम '**ज्ञानमती**' प्रकट किया।

आर्यिका दीक्षा के अनन्तर आचार्य प्रवर के सानिध्य में २ वर्ष तक रहने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ। आचार्य श्री की समाधि के पश्चात् लगभग ६ वर्ष तक पू. आ. श्री शिवसागर जी महाराज के संघ में रह कर अनेकानेक भव्य प्राणियों को सुमार्ग दर्शाया ही नहीं अपितु मोक्षमार्ग पर भी लगाया। प्रारंभ से ही अध्ययन अध्यापन आपका मुख्य व्यसन-सा रहा है। यही कारण है कि आपमें जिस ज्ञान का आविर्भाव हुआ वह शिष्य-वर्ग को पढ़ाकर ही हुआ। आपको गुरुमुख से अध्ययन करने का बहुत ही कम अवसर प्राप्त हुआ।

वैसे तो समस्त जैन समाज आपका चिरऋणि है। किन्तु आपने मुझ जैसे जिन-जिन प्राणियों को समीचीन मार्ग पर लगाया है वे तो जन्म जन्मान्तर में भी आपके इस ऋण से उऋण नहीं हो सकते। आप उस प्रज्वलित दीपक के समान हैं जो स्वयं जलकर भी दूसरों को प्रकाशित करता है। वास्तव में आप वीतरागता एवं त्याग की ऐसी मशाल हैं जिनसे अनेकानेक मशालें प्रज्वलित हुईं।

क्षुल्लिका अवस्था से लेकर अब तक आपने बीसों भव्य-प्राणियों को न्याय, व्याकरण, सिद्धांतादि विषयों में उच्च कोटि का धार्मिक ज्ञान प्रदान कर जगत पूज्य पद पर आसीन कराया। जिनमें पू. मुनिराज श्री संभवसागर जी महाराज, पू. मुनिराज श्री वर्धमानसागर जी, स्व. पू. आर्यिका श्री पद्मावती जी, पू. आर्यिका श्री जिनमती जी, पू. आर्यिका श्री आदिमती जी, पू.

आर्यिका श्री श्रेष्ठमती जी, पू. आर्यिका श्री यशोमती जी एवं पू. क्षु. श्री मनोवतीजी आदि हैं।

पू. माताजी के जीवन की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उन्होंने न ही केवल अन्य लोगों में वैराग्य की भावना जागृत कर त्यागी बनाया और न मात्र घर के ही सदस्यों को त्याग मार्ग में लगाया अपितु समान रूप से दोनों पक्षों को प्रेरित किया।

आपकी एक लघु सहोदरा पू. आर्यिका श्री अभयमती जी आत्म-कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। जिस लघु भ्राता श्री रवीन्द्र कुमार को आप २ वर्ष की अवस्था में एवं लघु सहोदरा कु० मालती को २१ दिन की अवस्था में रोते-बिलखते हुये छोड़कर घर से निकल आई थीं, उन्होंने भी योग्य अवस्था धारण कर आपके ही मार्ग का अनुसरण किया। कु० मालती ने वि० सं० २०२६ में आसौज शुक्ला १० (दशहरे) के दिन एवं श्री रवीन्द्र कुमार 'शास्त्री बी० ए०' ने वैसाख कृष्णा ७ वि० सं० २०२९ को आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर यह दिखा दिया कि अभी भी चतुर्थकाल के समान एक ही परिवार से एक ही माता के उदर से जन्म लेने वाले ४ भाई-बहिन अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत को (कौटुम्बिक परेशानियों से नहीं अपितु धर्मभावना से प्रेरित होकर एवं आत्मकल्याण की भावना से ओतप्रोत होकर) धारण करने वाला **"आदर्श परिवार"** टिकैतनगर में विद्यमान है।

इसी आदर्श परिवार की कुमारी माधुरी एवं कु० त्रिशला की भी धर्म में तीव्र रुचि है। लौकिक अध्ययन आवश्यकतानुसार हो जाने से संघ में पू० माताजी के पास रहकर बड़ी ही तन्मयता से धार्मिक ज्ञान को प्राप्त कर रही हैं। न्याय, व्याकरण,

छंद, अलंकार, साहित्य आदि विषयों का गंभीरता से अध्ययन कर गतवर्ष में न्याय प्रथमा एवं शास्त्री की परीक्षा देकर प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त कर पारितोषिक प्राप्त किया। इस वर्ष न्यायतीर्थ की तैयारी कर रही हैं। ११ वर्ष की उम्र में तीर्थ की परीक्षा देने वाली कु० त्रिशला प्रथम विद्यार्थी होगी। यह सब माताजी के अथक परिश्रम का ही फल है।

जहाँ पुत्र-पुत्रियों ने त्याग धर्म को अपनाया, वहां माता भी पीछे नहीं रहीं। धर्म-परायण माता ने ४ पुत्र रत्न एवं ६ कन्या रत्नों को जन्म देकर नित्य प्रति धर्मार्जन करते हुए सन्तानों को सुसंस्कारित कर योग्य बनाया एवं स्वयं त्यागमार्ग पर चलते हुए क्रमशः दूसरी, तीसरी एवं पांचवी प्रतिमा का पालन करते हुये पति सेवा में संलग्न रहकर महान् पुण्य संचय किया। वि० सं० २०२६ में पतिदेव की समाधि के ८ माह उपरांत सप्तम् प्रतिमा धारण कर ली किन्तु इतने पर भी आपको संतोष नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा (सुपुत्री) पू० आ० श्री ज्ञानमतीजी के मार्मिक सद्बोध से प्रेरित होकर वि० सं० २०२८ में मगसिर कृष्णा ३ को अजमेर (राज०) में आ० श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा धारण कर 'रत्नों की खान' माता मोहिनी देवी ने "रत्नमती" नाम प्राप्त किया।

"माता रत्नमतीजी" की सभी संतानें धर्मनिष्ठ हैं जिनका परिचय इस प्रकार है—

सुपुत्री—श्री मैना देवी—पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती जी

सुपुत्र—श्री कैलाशचंदजी—विवाहित—चांदी सोने का व्यापार

" " प्रकाशचंद जी " कपड़े का व्यापार

" " सुभाषचंद जी " " " "

" " रवीन्द्र कुमार—बालब्रह्मचारी " "

सुपुत्री—श्री शांति देवी—विवाहित
" " श्रीमती देवी "
" " मनोवती देवी—पू० आर्यिका श्री अभयमतीजी
" " कुमुदिनी देवी—विवाहित
" कु० मालती देवी—बालब्रह्मचारिणी
" श्री कामिनी देवी—विवाहित
" कु० माधुरी —अविवाहित
" " त्रिशला "

पू० श्री ज्ञानमती माताजी ऐसे वृक्ष से फलित हुई हैं जिसकी प्रत्येक शाखा पर त्याग और तपस्या के मंगल पुष्प विकसित हुये हैं। कुछेक पुष्प तो पककर त्याग और तपस्या के साक्षात् फल बनकर मानव कल्याण एवं आत्मोन्नति में लगे हुये हैं और कुछ पुष्प अभी विकसित होने हैं उनका भविष्य भी पूर्णमासी के चन्द्रमा की ज्योत्सना के समान उज्ज्वल ही प्रतीत होता है।

माता मोहिनी देवी ने अपने उदर से ऐसी आध्यात्मिक निधियों का सृजन कर आत्मिक उपवन को संजोया है जिनके द्वारा आत्मज्ञान का दीप एवं रत्नत्रय-धर्म का सूर्य सदा आलोकित होता रहा है। आज अखिल भारतवर्षीय दि० जैन समाज का कौन-सा ऐसा व्यक्ति होगा जो प० पू० आचार्य श्री धर्म सागर जी संघस्था-आध्यात्मिक ज्ञान से ओत-प्रोत, परमविदुषी-रत्न पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती जी के नाम से परिचित न हो। जिन्होंने अपने दर्शन, ज्ञान एवं चरित्र से अपनी मातु श्री की कोख के गौरव को द्विगुणित ही नहीं किया, अपितु उसकी महिमा में चार चाँद लगा दिये हैं।

मातुश्री ने बालिका "मैना" में ऐसे धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण किया जिससे आज वह विशाल वृक्ष के रूप में स्थित

रत्नों की खान—पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी

(भूतपूर्व विशाल परिवार के मध्य)

नीचे बैठी हुई—प्रथम पंक्ति में (बांयें से दायें) : सुपुत्रियाँ—(१) शांतिदेवी (२) कामिनीदेवी (३) कु० त्रिशला (४) बाल ब्र० कु० मालती (५) कु० माधुरी (६) कुमुदिनी देवी (७) श्रीमती देवी।

द्वितीय पंक्ति—सुपुत्र : (१) कैलाशचन्द (२) सुभाषचन्द (३) सुपुत्री—बाल ब्र० आर्यिका पू० श्री अभयमती माताजी (४) स्वयं पू० आर्यिका श्री रत्नमती माताजी (५) सुपुत्री—विदुषी रत्न बाल ब्र० पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी (६) सुपुत्र—बाल ब्र० रवीन्द्रकुमार शास्त्री, बी०ए० (७) श्री प्रकाशचन्द।

तृतीय पंक्ति—(खड़ी हुई) : पुत्र वधु—(१) चन्दादेवी (२) सुषमादेवी। (३) दामाद—जयप्रकाश (४) प्रेमचन्द। (५) भाई—भगवानदास (६) दामाद—प्रकाशचन्द (७) राजकुमार। (८) जेठानी—छुहारादेवी। (९) पुत्रवधु—ज्ञानादेवी।

होकर सरस फलों को प्रदान कर रहा है। आज निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि मोहिनी देवी जैसी महान् धर्मनिष्ठ माता न होती तो परम विदुषी ज्ञानमती माताजी का वरदहस्त हम लोगों को प्राप्त नहीं होता और यदि पू० माता ज्ञानमती जी नहीं होती तो अनेकानेक स्त्री-पुरुषों को धर्म मार्ग में प्रवृत्त कराने का श्रेय किसको होता ?

आप "गर्भाधानक्रियान्यूनो पितरौ हि गुरुर्नृणाम्" वाली उक्ति को चरितार्थ करने वाली ऐसी **जगतपूज्यमाता** हैं जिन्होंने अपने आश्रित शिष्य वर्ग को हर तरह से योग्य बनाकर अपने समकक्ष एवं अपने से पूज्यपद पर आसीन कराया है। आपने निकट रहने वाले छात्र-छात्राओं को परम आत्मीयता से ठोस शास्त्राध्ययन कराकर परीक्षाएँ दिलवाकर शास्त्री, न्यायतीर्थ आदि उपाधियों से विभूषित कराया है उन्हीं में से एक मैं (लेखक) भी हूँ।

आपका ज्ञान प्रत्येक विषय में बहुत ही बढ़ा-चढ़ा है। न्याय, व्याकरण, छंद, अलंकार, सिद्धान्तादि सर्वाङ्गीण विषयों पर आपका विशेष प्रभुत्व है। हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत, कन्नड़, एवं मराठी भाषा पर भी आप अच्छा अधिकार रखती हैं। आपने भक्ति एवं स्तुति के माध्यम से हिन्दी, संस्कृत एवं कन्नड़ में कई रचनाएँ निर्मित की हैं जो समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। प्रतिवर्ष आप कई नवीन रचनाओं का सृजन करती हैं।

आपने दो वर्ष पूर्व ही न्याय के महान् ग्रंथराज "**अष्टसहस्री**" का हिन्दी अनुवाद करके जैन न्याय के मर्म को समझने में सुगमता प्रदान की है जो कि आबाल गोपाल के लिये उपयोगी हो

आवेगा। उक्त ग्रन्थ का (हिन्दी अनुवाद सहित) प्रकाशन कार्य चल रहा है।

दीक्षित जीवन काल के २० वर्षों में आपने हजारों मील की पद यात्रा करके अनेक तीर्थों की वन्दना करते हुये भगवान महावीर के संदेशों को जन-जन में पहुंचाने का पुरुषार्थ किया। वि. सं. २०१९ में तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी की यात्रा हेतु आप ८ आर्यिकाओं एवं १ क्षुल्लिका को साथ में लेकर दक्षिण भारत का भ्रमण करते हुये कलकत्ता, हैदराबाद, श्रवणबेलगोल, सोलापुर एवं सनावद जैसे प्रमुख नगरों में चातुर्मास करती हुई पुनः वि. सं. २०२५ में पुनः आचार्य संघ में पधारीं। इन चातुर्मासों में आपके द्वारा अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। अनेकों स्थानों पर सार्वजनिक सभाओं में उपदेश देकर जैन धर्म का महान उद्योत किया।

गत अजमेर चातुर्मास के पश्चात् आद्य गुरु आ. रत्न श्री देशभूषण जी महाराज के दर्शनार्थ एवं भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव को सफल बनाने के लिये ही भारत की राजधानी दिल्ली में ससंघ आपका प्रथम पदार्पण हुआ है।

दिल्ली आगमन से पूर्व आपकी ही पुनीत प्रेरणा से ब्यावर (राज.) की जैन समाज ने पंचायती नसिया में रंग-बिरंगी बिजली एवं नदी, फव्वारों की आभा से युक्त बहुत ही आकर्षक (जैन भू-लोक की व्यवस्था को दर्शाने वाली) जम्बूद्वीप की रचना बनाने का निश्चय किया है जिसका निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। लगभग आधी से अधिक रचना तैयार हो चुकी है।

आपकी यह उत्कट भावना है कि भगवान महावीर स्वामी के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में विशाल खुले

मैदान पर जैन भूगोल अर्थात् जम्बूद्वीप की वृहत् रचना का निर्माण किया जाय जिसके मध्म में १०१ फुट ऊंचा सुमेरु पर्वत वहुत दूर से ही दर्शकों के मन को मोहित करने वाला होगा। बाग-बगीचों, नदी-फव्वारों से युक्त बिजली की अलौकिक शोभा को देखने के लिए कौन आतुरित नहीं होगा। यह रचना देश-विदेश के लोगों के आकर्षण का केन्द्र होगी। यह केवल मात्र मंदिर नहीं होगा किन्तु शिक्षाप्रद संस्थान एवं जैन धर्म तथा जैन भूगोल का सूक्ष्मता से ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनुसंधान केन्द्र के रूप में होगा।

यह अमर कृति देश-विदेश के पर्यटकों के लिये दर्शनीय स्थल बनकर हजारों वर्षों तक निर्वाण महोत्सव की याद दिलाती रहेगी।

प्रसन्नता की बात है कि उक्त रचना के निर्माण हेतु पहाड़ी धीरज की जैन समाज ने सर्वप्रथम (प्रारंभिक चरण रूप में) योगदान हेतु निर्णय कर लिया है। जिसमें समस्त दिल्ली की जैन समाज ही नहीं अपितु अखिल भारत की जैन समाज का सहयोग अपेक्षित है।

निर्माण कार्य हेतु दि० जैन समाज नजफगढ़ दिल्ली ने ५० हजार वर्ग गज भूमि प्रदान की है। श्री वीरप्रभु से प्रार्थना करते हैं कि पू० माताजी का शुभाशीष चिरकाल तक प्राप्त होता रहे।

शतशः नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !

ग्रन्थ प्रकाशक

संस्थान का परिचय

परम पूज्य विदुषीरत्न आर्यिका श्री ज्ञानमति माता जी की पुनीत प्रेरणा से दिल्ली में 'जैन त्रिलोक शोधसंस्थान' 'Jain-Institute of cosmographic Research' की स्थापना हुई है उसके प्रमुख ५ स्तम्भ हैं। (१) रचना (२) वाणी (३) ग्रन्थ-माला (४) साधु आवास (५) विद्यालय।

रचनात्मक कार्य में जम्बू द्वीप की रचना एक विशाल खुले मैदान पर निर्माण की जावेगी जिसके अन्तर्गत हिमवान महा-हिमवान आदि छह पर्वत, उन पर स्थित सरोवरों में कमलों पर बने श्री ह्री आदि देवियों के महल एवं उन सरोवरों से निकलने वाली गंगा सिन्धु आदि १४ नदियां कल-कल ध्वनि से युक्त प्रवाहित होती हुई दिखाई जावेंगी, जम्बू–शाल्मालि वृक्ष एवं उनकी शाखाओं पर स्थित अकृत्रिम जिन मन्दिर, विदेह क्षेत्र की ३२ नगरियाँ—जिनमें सीमंधर आदि विद्यमान तीर्थंकरों के सम-वशरण, भरत हैमवत आदि क्षेत्र, भरत क्षेत्र के ६ खण्ड (१ आर्य खण्ड, ५ म्लेच्छ खण्ड), आर्य खण्ड में वर्तमान सम्पूर्ण विश्व का दृश्य, चक्रवर्तियों द्वारा ६ खण्ड विजय की प्रशस्ति लिखा जाने वाला वृषभाचल पर्वत, मध्यलोक में सर्वोन्नत सुमेरु पर्वत तथा उस पर स्थित १६ अकृत्रिम जिन चैत्यालयों के मनोरम दृश्यों की शोभा का दिग्दर्शन कराया जावेगा।

इसके अलावा भगवान महावीर के आदर्श जीवन का एवं

उनकी सर्व हितकारी वाणी का प्रचार रेडियो, टेपरेकार्डर, टेलिविजन एवं चल-चित्र आदि के माध्यम से किया जावेगा।

संस्था के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—

(१) दिगम्बर जैन शास्त्रीय आधार पर त्रिलोक सम्बन्धी शोध करना।

(२) जैन साहित्य, जैन कला तथा जैन संस्कृति की खोज एवं प्रचार करना।

(३) राष्ट्र हित में अन्य धार्मिक एवं सामाजिक कार्य जिनको संस्थान उपयुक्त समझे करना-कराना इत्यादि।

इस प्रकार अनेक हितकारी उद्देश्यों मे युक्त यह संस्था समाज को समय-समय पर नई-नई खोजों से अवगत कराती रहेगी।

इन सब कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक स्थाई समिती की भी स्थापना की जा चुकी है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

संचालक—मोतीचंद जैन सर्राफ शास्त्री, न्यायतीर्थ ।

विदुषीरत्न पू. आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा संस्थापित जैन त्रिलोक शोध संस्थान दिल्ली के अंतर्गत इस ग्रंथमाला का उदय हुआ है ।

ग्रन्थमाला की ओर से प्रथम पुष्प के रूप में पू. श्री ज्ञानमती मातजी द्वारा अनुवादित अष्टसहस्री प्रथम भाग शीघ्र प्रकाशित होने वाला है । प्रकाशन कार्य तीव्रगति से चल रहा है। यह न्याय की सर्व प्रधान प्राचीन कृति है जिसका हिन्दी अनुवाद अभी तक अनुपलब्ध था । माताजी ने अथक परिश्रम करके इसे जन-साधारण के स्वाध्याय योग्य बना दिया है । यथा स्थान भावार्थ विशेपार्थ एवं सारांश देकर ग्रन्थ को बहुत सुगम कर दिया है ।

द्वितीय पुष्प "जैन ज्योतिर्लोक" आपके हाथों में उपलब्ध है । इस लघु पुस्तिका की १००० प्रतियां ३ वर्ष पूर्व प्रथमावृत्ति के रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं । पाठकों की अधिक मांग होने से इस द्वितीय आवृत्ति में २५०० पुस्तकें छपी हैं । इस प्रकाशन में यथावश्यक सुधार भी किया गया है ।

तृतीय पुष्प "जैन त्रिलोक" है । इसमें तिलोयपण्णत्ति, लोक विभाग, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों के आधार से संक्षिप्त रूप में तीनों लोकों का दिग्दर्शन कराया गया है । इसका प्रकाशन कार्य भी द्रुत गति से चल रहा है ।

ग्रन्थमाला के उद्देश्य

१—श्री दि० जैन आर्ष मार्ग को पोषण करने वाले धर्म ग्रन्थों को छपाना और उन्हें बिना मूल्य या मूल्य से वितरित करना।

२—न्याय, अध्यात्म, सिद्धान्त एवं विशेषतया जैन त्रिलोक सम्बन्धी Research शोध के लिए ग्रन्थों को संग्रहीत करना एवं प्रकाशित करना।

३—समय-समय पर धार्मिक-उपयोगी ट्रैक्टों को प्रकाशित करना।

४—त्यागीगण एवं विद्वन्वर्ग को स्वाध्याय के लिए ग्रन्थ प्रदान करना।

५—अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थों को संग्रहीत करना एवं प्रकाशित करना।

जैन ज्योतिर्लोक

अनुक्रम दर्पण

समर्पण

जिन्होंने सिद्धत्व की उपलब्धि हेतु बालब्रह्मचर्य व्रत
अंगीकार कर (साटिका मात्र रखकर) समस्त
परिग्रह का परित्याग कर स्त्रियोचित
परमोत्कृष्ट आर्यिका पद
धारण किया है

जो भौतिक सुखों की वाञ्छा से सर्वथा परे हैं।

जो स्वपर कल्याण की उत्कट अभिलाषा से युक्त होकर चतुर्गति
रूप संसार से उन्मुक्त होने के लिए कटिबद्ध हैं।
"माता बालक का हित चाहती है।"

---तदनुसार---

जो विश्व के प्राणी मात्र का हित चाहते हुए मोक्ष मार्ग
में लगाने वाली सच्ची 'जगत माता' हैं।

ध्यान अध्ययन एवं पठन पाठन में रत रहती हुई
आर्ष मार्ग पर प्रवृत्त एवं पोषक, वात्सल्य
स्वरूप, हितचिंतक विदुषीरत्न,

पूज्य श्री ज्ञानमती माता जी

के कर कमलों
में
सविनय सादर समर्पित—

मोतीचंद जैन सर्राफ

ॐ

॥ श्री महावीराय नमः ॥

मंगलाचरण

वेसदछप्पण्णंगुल-कदि-हिद-पदरस्स संखभागमिदे ।
जोइस-जिणिन्दगेहे, गणणातीदे णमंसामि ॥

अर्थ—दो सौ छप्पन अंगुल के वर्ग प्रमाण (पण्णट्ठी प्रमाण) प्रतरांगुल का जगत्प्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतने ज्योतिषी देव हैं। संख्यातों ज्योतिर्वासी देव एक बिंब में रहते हैं। एक-एक बिंब में १-१ चैत्यालय हैं। इसलिये ज्योतिष्क देवों के प्रमाण में संख्यात का भाग देने से ज्योतिष्क देव संबंधि जिन चैत्यालयों का प्रमाण आता है जो कि असंख्यात रूप ही है। उन ज्योतिष्क देव संबधि असंख्यात जिन चैत्यालयों को और उनमें स्थित जिन प्रतिमाओं को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

वर्तमान में वैज्ञानिकों की चन्द्रलोक यात्रा की चर्चा यत्र तत्र सर्वत्र हो हो रही है। जैन एवं अजैन, सभी बन्धुगण प्रायः इस चर्चा में बड़ी ही रुचि से भाग ले रहे हैं, जैन सिद्धांत के अनुसार यह यात्रा कहाँ तक वास्तविक है, इस पुस्तक को पढ़ने वाले आस्तिक्य बुद्धिधारी पाठकगण स्वयमेव ही निर्णय कर सकते हैं।

इस विषय पर विशेष ऊहापोह न करके इस पुस्तक में केवल जैन सिद्धांत के अनुसार ज्योतिर्लोक का कुछ थोड़ासा वर्णन किया जा रहा है।

आज प्रायः बहुत से जैन बन्धुओं को भी यह मालूम नहीं है कि जैन सिद्धांत में सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रों आदि के विमानों का क्या प्रमाण है एवं वे यहाँ से कितनी ऊंचाई पर हैं इत्यादि ? क्योंकि त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, लोकविभाग, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय का प्रायः आजकल अभाव सा ही देखा जाता है।

इसीलिये कुछ जैन बन्धु भी भौतिक चकाचोंध में पड़कर वैज्ञानिकों के वाक्यों को ही वास्तविक मान लेते हैं अथवा कोई-कोई बन्धु संशय के झूले में ही झूलने लगते हैं।

वास्तव में वैज्ञानिक लोग तो हमेशा ही किसी भी विषय के अन्वेषण एवं परीक्षण में ही लगे रहते हैं। किसी भी विषय में अंतिम निर्णय देने में वे स्वयं ही असमर्थ हैं। ऐसा वे स्वयं ही लिखा करते हैं।

देखिये—वैज्ञानिकों का पृथ्वी के बारे में कथन—

"हमारा सौर मंडल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति एक रहस्यमय

पहेली है। इस बारे में अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अलग २ विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने अपनी बुद्धि एव तर्क के अनुसार अलग २ मत प्रचलित किये हैं। उन सब मतों के अध्ययन के पश्चात् हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं। ब्रह्माण्ड की विशालता के समक्ष मानव एक क्षण भंगुर प्राणी है। उसका ज्ञान सीमित है। प्रकृति के रहस्यों को ज्ञात करने के लिये जो साधन उनके पास उपलब्ध हैं, वे सीमित हैं, अपूर्ण हैं। वैज्ञानिकों के विभिन्न सिद्धाँतों को हम रहस्योद्घाटन की अटकलें मात्र कह सकते हैं। वास्तव में कुछ मान्यताओं के आधार पर आश्रित अनुमान ही हैं।" [1]

इस प्रकार हमेशा ही वैज्ञानिक लोग शोध में ही लगे रहने से निश्चित उत्तर नहीं दे सकते हैं।

परन्तु अनादिनिधन जैन सिद्धाँत में परंपरागत सर्वज्ञ भगवान ने सम्पूर्ण जगत को केवलज्ञान रूपी दिव्य चक्षु से प्रत्यक्ष देखकर प्रत्येक वस्तु तत्त्व का वास्तविक वर्णन किया है। उनमें कुछ ऐसे भी विषय हैं, जो कि हम लोगों की बुद्धि एवं जानकारी से परे हैं। उसके लिये कहा है कि—

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनाः॥

---

१. सामान्य शिक्षा पुस्तक बी० ए० कोर्स की १९६७ में छपी।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया कोई-कोई तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। किसी भी हेतु के द्वारा उसका खण्डन नहीं हो सकता है परन्तु—"जिनेन्द्र देव ने ऐसा कहा है" इतने मात्र से ही उस पर श्रद्धान करना चाहिये। क्योंकि—"जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं हैं" इस प्रकार की श्रद्धा से जिनका हृदय ओत-प्रोत है उन्हीं महानुभावों के लिये यह मेरा प्रयास है।

तथा जो आधुनिक जैन बन्धु या अजैन बन्धु अथवा वैज्ञानिक लोग जो कि मात्र जैन धर्म में "ज्योतिर्लोक के विषय में क्या मान्यता है" यह जानना चाहते हैं। उनके लिये ही संक्षेप से यह पुस्तक लिखी गई है।

आज से लगभग १२०० वर्ष पहले भी आचार्य श्री विद्यानंद स्वामी ने श्लोकवार्तिक ग्रन्थ में भूभ्रमण खण्डन एवं ज्योतिर्लोक के विषय पर अत्यधिक प्रकाश डाला था। जिसकी हिन्दी स्व. पं० माणिकचन्द्रजी न्यायालंकार ने बहुत विस्तृत रूप में की है। ये ग्रन्थराज सोलापुर से प्रकाशित हो चुके हैं।

इन प्रकरणों को विशेष समझने के लिये श्री श्लोकवार्तिक में **"रत्नाशर्कराबालुकापंक"** इत्यादि सूत्र का अर्थ तथा **"मेरु-प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके"** सूत्र का अर्थ अवश्य देखें। तथा लोकविभाग का छठा अधिकार एवं तिलोयपण्णत्ति दूसरे भाग का सातवां अधिकार भी अवश्य देखना चाहिये।

विशेष—जैनागम में योजन के २ भेद हैं। (१) लघु योजन (२) महा योजन। ४ कोश का लघु योजन, एवं २००० कोश का महायोजन होता है। योजन एवं कोश आदि का विशेष विवरण इसी पुस्तक के अन्त में दिया गया है। यहाँ तो लोक प्रसिद्ध १ कोश में २ मील माने हैं उसी के अनुसार १ महायोजन में स्थूल रूप से ४००० मील मानकर सर्वत्र ४००० से ही गुणा करके मील की संख्या बताई गई।

क्योंकि जम्बूद्वीप आदि द्वीप, समुद्र, ज्योतिर्वासी बिंब आदि एवं पृथ्वीतल से उनकी ऊंचाई आदि तथा सूर्य, चन्द्र की गली [1] एवं गमन आदि का प्रमाण आगम में महायोजन से माना है।

अब यहाँ सूर्य-चन्द्र आदि के स्थान, गमन आदि के क्षेत्र को बतलाने के लिये प्रारम्भ में कुछ अति संक्षिप्त भौगोलिक (द्वीप-समुद्र संबंधि) प्रकरण ले लिया है। अनंतर ज्योतिर्लोक का वर्णन किया जायेगा।

आकाश के २ भेद हैं—(१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश।

लोकाकाश के ३ भेद हैं—(१) अधो लोक (२) मध्यलोक (३) ऊर्ध्वलोक। अनन्त अलोकाकाश के बीचोंबीच में यह पुरुषाकार तीन लोक है।

---

१ भ्रमण मार्ग।

तीनलोक की ऊंचाई का प्रमाण

तीनलोक की ऊंचाई १४ राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र ७ राजू है।

तीनलोक के जड़ भाग से लोक की ऊंचाई का प्रमाण—

अधोलोक की ऊंचाई=७ राजू। इसमें ७ सात नरक हैं। प्रथम नरक के ऊपर की पृथ्वी का नाम चित्रा पृथ्वी है।

ऊर्ध्व लोक की ऊंचाई=७ राजू है। अर्थात् ७ राजू ऊंचाई प्रथम स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला पर्यन्त है।

नरक के तल भाग में लोक की चौड़ाई=७ राजू है।

यह चौड़ाई घटते घटते मध्य लोक में=१ राजू रह गई। मध्य-लोक से ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मलोक (५वें स्वर्ग) तक ५ राजू हो गई है।

५ वें ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग से ऊपर घटते घटते सिद्धशिला तक चौड़ाई } =१ राजू रह गई

तीनों लोकों के बीचों बीच में १ राजू चौड़ी तथा १४ राजू लम्बी त्रस नाली है। इस त्रस नाली में ही त्रसजीव पाये जाते हैं।

मध्यलोक का वर्णन

मध्य लोक १ राजू चौड़ा और १ लाख ४० योजन[1] ऊंचा है। यह चूड़ी के आकार का है। इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं।

जंबूद्वीप का वर्णन

इस मध्यलोक में १ लाख योजन व्यास वाला अर्थात् ४००००००००० (४० करोड़) मील विस्तार वाला जंबूद्वीप स्थित है। जंबूद्वीप को घेरे हुये २ लाख योजन विस्तार (व्यास) वाला लवण समुद्र है। लवण समुद्र को घेरे हुये ४ लाख योजन व्यास वाला धातकी खंड द्वीप है। धातकी खंड को घेरे हुये ८ लाख योजन व्यास वाला वलयाकार कालोदधि समुद्र है। उसके पश्चात् १६ लाख योजन व्यास वाला पुष्करवर द्वीप है। इसी तरह आगे-आगे द्वीप तथा समुद्र क्रम से दूने-दूने प्रमाण वाले होते गये हैं।

---

१. असंख्यातों योजनों का १ राजू होता है और १४ राजू ऊंचे लोक में ७ राजू में नरक एवं ७ राजू में स्वर्ग हैं। इन दोनों के मध्य में १ लाख ४० योजन ऊंचा सुमेरू पर्वत है। बस इसी सुमेरू प्रमाण ऊंचाई वाला मध्यलोक है जो कि ऊर्ध्व लोक का कुछ भाग है और वह राजू में नाकुछ के समान है। अतएव ऊंचाई में उसका वर्णन नहीं आया।

अंत के द्वीप और समुद्र का नाम स्वयंभूरमणद्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है। कालोदधि समुद्र के बाद पाये जाने वाले असंख्यातों द्वीपों और समुद्रों के नाम सदृश ही हैं। अर्थात् जो द्वीप का नाम है वही समुद्र का नाम है। पांचवें समुद्र का नाम क्षीरोदधि समुद्र है। इस समुद्र का जल दूध के समान है। भगवान के जन्माभिषेक के समय देवगण इसी समुद्र का जल लाकर भगवान का अभिषेक करते हैं।

आठवां नंदीश्वर नाम का द्वीप है। इसमें ५२ जिनचैत्यालय हैं। प्रत्येक दिशा में १३-१३ चैत्यालय हैं। देव गण वहाँ भक्ति से दर्शन पूजन आदि करके महान पुण्य संपादन करते रहते हैं।

जंबूद्वीप के मध्य में १ लाख योजन ऊंचा तथा १० हजार योजन विस्तार वाला सुमेरु पर्वत[1] है। इस जंबूद्वीप में ६ कुलाचल (पर्वत) एवं ७ क्षेत्र हैं। ६ कुलाचलों के नाम—(१) हिमवान् (२) महाहिमवान् (३) निषध (४) नील (५) रुक्मि (६) शिखरी। (७) क्षेत्रों के नाम—(१) भरत (२) हैमवत (३) हरि (४) विदेह (५) रम्यक (६) हैरण्यवत (७) ऐरावत।

जंबूद्वीप के भरत आदि क्षेत्रों एवं पर्वतों का प्रमाण

भरत क्षेत्र का विस्तार जंबूद्वीप के विस्तार का १९० वां भाग है। अर्थात् $\frac{१००००००}{१९०}$ = ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन अर्थात् २१०५२६३$\frac{३}{१९}$ मील

१. यह पर्वत विदेह क्षेत्र के बीच में है।

१. चैत्यालय का यह प्रमाण सबसे जघन्य है।

है। भरत क्षेत्र के आगे हिमवन पर्वत का विस्तार भरत क्षेत्र से दूना है। इस प्रकार आगे-आगे क्रम से पर्वतों से दूना क्षेत्रों का तथा क्षेत्रों से दूना पर्वतों का विस्तार होता गया है। यह क्रम विदेह क्षेत्र तक ही जानना। विदेह क्षेत्र के आगे-आगे के पर्वतों और क्षेत्रों का विस्तार क्रम से आधा-आधा होता गया है। (विशेष रूप से देखिये—चार्ट नं० १)

विजयार्ध पर्वत का वर्णन

भरत क्षेत्र के मध्य में विजयार्ध पर्वत है। यह विजयार्ध पर्वत ५० योजन (२०००० मील) चौड़ा और २५ योजन (१००००० मील) ऊंचा है एवं लंबाई दोनों तरफ से लवण समुद्र को स्पर्श कर रही है। पर्वत के ऊपर दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ इस धरातल से १० योजन ऊपर तथा १० योजन ही भीतर समतल में विद्याधरों की नगरियां है। जो कि दक्षिण में ५० एवं उत्तर में ६० हैं। उसमे १० योजन और ऊपर एवं अंदर जाकर समतल में आभियोग्य जाति के देवों के भवन हैं। उससे ऊपर (अवशिष्ट) ५ योजन जाकर समतल पर ९ कूट हैं। इन कूटों में सिद्धायतन नामक १ कूट में जिन चैत्यालय एवं ८ कूटों में व्यंतरों के आवास स्थान हैं।

इस चैत्यालय की लंबाई=१ कोस[1], चौड़ाई=½ कोस, एवं ऊंचाई=¾ कोस की है। यह चैत्यालय अकृत्रिम है।

---

१. चैत्यालय का यह प्रमाण सबसे जघन्य है।

जंबूद्वीप का स्पष्टीकरण

चार्ट नं० १

	क्षेत्र तथा कुलाचलों के नाम	विस्तार		पर्वतों की ऊंचाई योजन से	पर्वतों की ऊंचाई मील से	पर्वतों के वर्ण
		योजन	मील			
क्षेत्र	भरत	५२६ $\frac{५}{१९}$	२१०५६३ $\frac{३}{१९}$	×	×	×
पर्वत	हिमवान	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६ $\frac{५}{१९}$	१००	४०००००	स्वर्ण
क्षेत्र	हैमवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$	८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$	×	×	×
पर्वत	महाहिमवान	४२१० $\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५ $\frac{५}{१९}$	२००	८०००००	रजत
क्षेत्र	हरि	८४२१ $\frac{१}{१९}$	३३६८४२१० $\frac{१०}{१९}$	×	×	×
पर्वत	निषध	१६८४२ $\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$	४००	१६०००००	तपायाहुआसोना
क्षेत्र	विदेह	३३६८४ $\frac{४}{१९}$	१३४७३६८४२ $\frac{२}{१९}$	×	×	×

पर्वत	नील	१६८४२$\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१$\frac{१}{१९}$	×	१६०००००	वैडूर्यमणि
क्षेत्र	रम्यक	८४२१$\frac{१}{१९}$	३३६८४२१०$\frac{१०}{१९}$	४००	×	×
पर्वत	रुक्मि	४२१०$\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५$\frac{५}{१९}$	×	८०००००	रजत
क्षेत्र	हैरण्यवत	२१०५$\frac{५}{१९}$	८४२१०५२$\frac{१२}{१९}$	२००	×	×
पर्वत	शिखरी	१०५२$\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६$\frac{६}{१९}$	×	४०००००	स्वर्ण
क्षेत्र	ऐरावत	५२६$\frac{६}{१९}$	२१०५२६३$\frac{३}{१९}$	१००	×	×

इस चैत्यालय में १०८ अकृत्रिम जिन प्रतिमायें हैं एवं अष्ट-मंगल द्रव्य, तोरण, माला, कलश, ध्वज आदि महान विभूतियों से ये चैत्यालय विभूषित हैं ।

यह विजयार्ध पर्वत रजत मई है। इसी प्रकार का विजयार्ध पर्वत ऐरावत क्षेत्र में भी इसी प्रमाण वाला है ।

विजयार्ध पर्वत

चौड़ाई

← ५० योजन →

ऊंचाई ← २५ योजन →

विद्याधरों की नगरी ६०	१० योजन
आभियोग्य जाति के देवों के पुर	१० योजन
९ कूट=८ कूट+१ चैत्यालय	५ योजन
अभियोग्य जाति के देवों के पुर	१० योजन
विद्याधरों की नगरी ५०	१० योजन

हिमवान पर्वत का वर्णन

हिमवन नामक पर्वत १०५२$\frac{१२}{१९}$ योजन (४२१०५२६$\frac{६}{१९}$मील) विस्तार वाला है। इस पर्वत पर पद्म नामक सरोवर है। यह सरोवर १००० योजन लंबा, ५०० योजन चौड़ा एवं १० योजन गहरा है। इसके आगे-आगे के पर्वतों पर क्रम से महापद्म तिगिंच्छ, केशरी, पुंडरीक, महापुंडरीक नाम के सरोवर हैं। पद्म सरोवर से दूनी लंबाई, चौड़ाई एवं गहराई महापद्म सरोवर की है। महापद्म से दूनी तिगिंच्छ की है। इसके आगे के सरोवरों की लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई का प्रमाण क्रम से आधा-आधा होता गया है। इन सरोवरों के मध्य में क्रमशः १, २ एवं ४ योजन के कमल हैं। वे पृथ्वीकायिक हैं। उन कमलों पर श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि एवं लक्ष्मी ये ६ देवियाँ अपने परिवार सहित निवास करती हैं।
देखिये—चार्ट नं० २)।

गंगा आदि नदियों के निकलने का क्रम

पद्म सरोवर के पूर्व तट से गंगा नदी एवं पश्चिम तट से सिंधु नदी निकली हैं। गंगा नदी पूर्व समुद्र में एवं सिंधु नदी पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती हैं। ये दोनों नदियां भरत क्षेत्र में बहती हैं। तथा इसी पद्म सरोवर के उत्तर तट से रोहितास्या नदी निकल कर हैमवत क्षेत्र में चली जाती है।

महापद्म सरोवर से, रोहित एवं हरिकांता ये, दो नदियां निकली

चार्ट नं० २

पद्म आदि सरोवर एवं देवियां

सरोवरों के नाम	सरोवरों की लम्बाई योजन	मील	चौड़ाई योजन	मील	गहराई योजन	मील	देवियां
पद्म	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४००००	श्रीदेवी
महापद्म	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००	ह्रीदेवी
तिगिञ्छ,	४०००	१६००००००	२०००	८००००००	४०	१६००००	धृतिदेवी
केसरी	४०००	१६००००००	२०००	८००००००	४०	१८००००	कीर्तिदेवी
पुंडरीक	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००	बुद्धिदेवी
महापुंडरीक	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४००००	लक्ष्मीदेवी

हैं। तिगिच्छ सरोवर से हरित् एवं सीतोदा, केसरी सरोवर से सीता और नरकांता, महापुंडरीक सरोवर से नारी व रूप्यकूला तथा पुंडरीक नामक अंतिम सरोवर से रक्ता, रक्तोदा एवं स्वर्णकूला ये तीन नदियां निकली है। इस प्रकार ६ पर्वतों पर स्थित ६ सरोवरों से १४ नदियां निकली हैं। प्रत्येक सरोवर से २—२ एवं पद्म तथा महापुंडरीक सरोवर से ३—३ नदियां निकली हैं।

यह गंगा और सिंधु नदी विजयार्ध पर्वत को भेदती हुई जाती हैं। अतः भरत क्षेत्र को ६ खण्डों में बांट देती हैं। विजयार्ध पर्वत के उस तरफ (उत्तर में) अर्थात् हिमवन और विजयार्ध के बीच ३ खंड हुए हैं। वे तीनों म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं। तथा विजयार्ध के इस तरफ (दक्षिण में) ३ खंड हैं, उनमें आजू-बाजू के दो म्लेच्छ खंड और बीच का आर्य खंड है। इन पांचों म्लेच्छ खंडों के निवासी जाति, खान-पान अथवा आचरण से म्लेच्छ नहीं हैं किन्तु मात्र वे क्षेत्रज म्लेच्छ हैं।

गंगा नदी का वर्णन

पद्म सरोवर से गंगा नदी निकलकर पांच सौ योजन पूर्व की ओर जाती हुई गंगाकूट के २ कोश इधर से दक्षिण की ओर मुड़कर भरतक्षेत्र में २५ योजन पर्वत से (उसे छोड़कर) यहां पर सवाछः (६$\frac{1}{4}$) योजन विस्तीर्ण, आधा योजन मोटी और आधा योजन ही आयत वृषभकार जिह्विका)नाली) है। इस नाली में प्रविष्ट

होकर वह गंगा नदी उत्तम श्री गृह के ऊपर गिरती हुई गोसींग के आकार होकर १० योजन विस्तार के साथ नीचे गिरती है।

गंगादेवी के श्रीगृह का वर्णन

जहाँ गंगा नदी गिरती है वहां पर ६० योजन विस्तृत एवं १० योजन गहरा १ कुण्ड है। उसमें १० योजन ऊंचा वज्रमय १ पर्वत है। उस पर गंगादेवी का प्रासाद बना हुआ है। उस प्रासाद की छत पर एक अकृत्रिम जिन प्रतिमा केशों के जटाजूट युक्त शोभायमान है। गंगा नदी अपनी चंचल एव उन्नत तरंगों से संयुक्त होती हुई जलधारा से जिनेन्द्र देव का अभिषेक करते हुए के समान ही गिरती है, पुनः इस कुण्ड से दक्षिण की ओर जाकर आगे भूमि पर कुटिलता को प्राप्त होती हुई विजयार्ध की गुफा में ८ योजन विस्तृत होती हुई प्रवेश करती है। अन्त में १४ हजार नदियों से संयुक्त होकर पूर्व की ओर जाती हुई लवण समुद्र में प्रविष्ट हुई है। ये १४ हजार परिवार नदियाँ आर्य खण्ड में न बहकर म्लेच्छ खण्डों में ही बहती हैं। इस गंगा नदी के समान ही अन्य १३ नदियों का वर्णन समझना चाहिए। अन्तर केवल इतना ही है कि भरत और ऐरावत में ही विजयार्ध पर्वत के निमित्त से क्षेत्र के ६ खण्ड होते हैं, अन्यत्र नहीं होते हैं।

ज्योतिर्लोक का वर्णन

ज्योतिष्क देवों के भेद

ज्योतिष्क देवों के ५ भेद हैं—(१) सूर्य, (२) चन्द्रमा, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र, (५) तारा।

इनके विमान चमकीले होने से इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं। ये सभी विमान अर्धगोलक के सदृश हैं तथा मणिमय तोरणों से अलंकृत होते हुये निरंतर देव-देवियों से एवं जिन मंदिरों से सुशोभित रहते हैं। अपने को जो सूर्य, चन्द्र, तारे आदि दिखाई देते हैं यह उनके विमानों का नीचे वाला गोलाकार भाग है।

ये सभी ज्योतिर्वासी देव मेरू पर्वत को ११२१ योजन अर्थात् ४४,८४००० मील छोड़कर नित्य ही प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते हैं। इनमें चन्द्रमा एवं सूर्य ग्रह ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण गमन क्षेत्र में स्थित परिधियों के क्रम से पृथक् २ गमन करते हैं। परंतु नक्षत्र और तारे अपनी २ एक परिधि रूप मार्ग में ही गमन करते हैं।

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वीतल से ऊंचाई का क्रम

उपरोक्त ५ प्रकार के ज्योतिर्वासी देवों के विमान इस चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन से प्रारंभ होकर ९०० योजन की ऊंचाई तक अर्थात् ११० योजन में स्थित हैं।

यथा—इस चित्रा पृथ्वी से ७६० योजन के उपर प्रथम ही ताराओं के विमान हैं। नंतर १० योजन जाकर अर्थात् पृथ्वीतल मे ८०० योजन जाकर सूर्य के विमान हैं तथा ८० योजन अर्थात् पृथ्वीतल से ८८० योजन (३५,२०,००० मील) पर चन्द्रमा के विमान हैं। (पूरा विवरण—चार्ट नं० ३ में देखिये।)

चार्ट नं० ३

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊंचाई

विमानों के नाम	(चित्रा पृथ्वी से ऊंचाई) योजन में	मील में
इस पृथ्वी से तारे	७६० योजन के ऊपर	३१६०००० मील पर
,, ,, सूर्य	८०० ,, ,,	३२००००० ,, ,,
,, ,, चन्द्र	८८० ,, ,,	३५२०००० ,, ,,
,, ,, नक्षत्र	८८४ ,, ,,	३५३६००० ,, ,,
,, ,, बुध	८८८ ,, ,,	३५५२००० ,, ,,
,, ,, शुक्र	८९१ ,, ,,	३५६४००० ,, ,,
,, ,, गुरु	८९४ ,, ,,	३५७६००० ,, ,,
,, ,, मंगल	८९७ ,, ,,	३५८८००० ,, ,,
,, ,, शनि	९०० ,, ,,	३६००००० ,, ,,

सूर्य, चन्द्र आदि के विमानों का प्रमाण

सूर्य का विमान $\frac{४८}{६१}$ योजन का है। यदि १ योजन में ४००० मील के अनुसार गुणा किया जावे तो ३१४७$\frac{३३}{६१}$ मील का होता है।

एवं चन्द्र का विमान $\frac{५६}{६१}$ योजन अर्थात् ३६७२$\frac{८}{६१}$ मील का है।

शुक्र का विमान १ कोश का है। यह बड़ा कोश लघु कोश से ५०० गुणा है। अतः ५०० × २ मील से गुणा करने पर १००० मील का आता है। इसी प्रकार आगे—

ताराओं के विमानों का सबसे जघन्य प्रमाण $\frac{१}{४}$ कोश अर्थात् २५० मील का है।

(देखिये चार्ट नं० ४)

इन सभी विमानों को बाहल्य (मोटाई) अपने २ विमानों के विस्तार से आधी-आधी मानी है।

राहु के विमान चन्द्र विमान के नीचे एवं केतु के विमान सूर्य विमान के नीचे रहते हैं अर्थात् ४ प्रमाणांगुल (२००० उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर चंद्र-सूर्य के विमान स्थित होकर गमन करते रहते हैं। ये राहु-केतु के विमान ६-६ महीने में पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र एवं सूर्य के विमानों को आच्छादित करते हैं। इसे ही ग्रहण कहते हैं।

चार्ट नं० ४

ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण

बिंबों का प्रमाण	योजन से	मील से	किरणें
सूर्य	$\frac{४८}{६१}$ योजन	३१४७$\frac{३३}{६१}$	१२०००
चन्द्र	$\frac{५६}{६१}$ योजन	३६७२$\frac{८}{६१}$	१२०००
शुक्र	१ कोश	१०००	२५००
बुध	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम ५०० मील	मंद किरणें
मंगल	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम ५०० मील	,,
शनि	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम ५०० मील	,,
गुरु	कुछ कम १ कोश	कुछ कम १००० मील	,,
राहु	कुछ कम १ योजन	कुछ कम ४००० मील	,,
केतु	कुछ कम १ योजन	कुछ कम ४००० मील	,,
तारे	$\frac{१}{४}$ कोश	२५० मील	,,

ज्योतिष्क विमानों की किरणों का प्रमाण

सूर्य एवं चन्द्र की किरणें १२०००-१२००० हैं। शुक्र की

किरणें २५०० हैं। बाकी सभी ग्रह, नक्षत्र एवं तारकाओं की मंद किरणें हैं।

वाहन जाति के देव

इन सूर्य और चन्द्र के प्रत्येक (विमानों को) आभियोग्य जाति के ४००० देव विमान के पूर्व में सिंह के आकार को धारण कर, दक्षिण में ४००० देव हाथी के आकार को, पश्चिम में ४००० देव बैल के आकार को एवं उत्तर में ४००० देव घोड़े के आकार को धारण कर(इस प्रकार १६००० हजार देव)सतत खींचते रहते हैं।

इसी प्रकार ग्रहों के ८०००, नक्षत्रों के ४००० एवं ताराओं के २००० वाहन जाति के देव होते हैं।

गमन में चन्द्रमा सबसे मंद है। सूर्य उसकी अपेक्षा शीघ्रगामी है। सूर्य से शीघ्रतर ग्रह, ग्रहों से शीघ्रतर नक्षत्र एवं नक्षत्रों से भी शीघ्रतर गति वाले तारागण हैं।

शीत एवं उष्ण किरणों का कारण

पृथ्वी के परिणाम स्वरूप (पृथ्वीकायिक)चमकीली धातुसे सूर्य का विमान बना हुआ है, जो कि अकृत्रिम है।

इस सूर्य के बिंब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नाम कर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं तथा

उसके मूल में उष्णता न होकर सूर्य की किरणों में ही उष्णता होती है। इसलिये सूर्य की किरणें उष्ण हैं।

उसी प्रकार चन्द्रमा के बिंब में रहने वाले पृथ्वीकायिक जीवों के उद्योत नाम कर्म का उदय है जिसके निमित्त से मूल में तथा किरणों में सर्वत्र ही शीतलता पाई जाती है। इसी प्रकार ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि सभी के बिंब—विमानों के पृथ्वी-कायिक जीवों के भी उद्योत नाम कर्म का उदय पाया जाता है।

सूर्य चन्द्र के विमानों में स्थित जिनमंदिर का वर्णन

सभी ज्योतिर्देवों के विमानों में बीचोंबीच में एक-एक जिन मंदिर है और चारों ओर ज्योतिर्वासी देवों के निवास स्थान बने हैं।

विशेष[1]—प्रत्येक विमान की तटवेदी चार गोपुरों से युक्त है। उसके बीच में उत्तम वेदी सहित राजांगण है। राजांगण के ठीक बीच में रत्नमय दिव्य कूट है। उस कूट पर वेदी एवं चार तोरण द्वारों से युक्त जिन चैत्यालय (मंदिर) हैं। वे जिन मदिर मोती व सुवर्ण की मालाओं से रमणीय और उत्तम वज्रमय

१. तिलोयपण्णत्ति के आधार से।

किवाड़ों से संयुक्त दिव्य चन्द्रोपकों से सुशोभित हैं। वे जिन भवन देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण वंदनमाला, चमर, क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से शोभायमान हैं। उन जिन भवनों में स्थान-स्थान पर विचित्र रत्नों से निर्मित नाट्य सभा, अभिषेक सभा एव विविध प्रकार की क्रीड़ाशालायें बनी हुई हैं।

वे जिन भवन समुद्र के सदृश गंभीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग, पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य शब्दायमान हैं। उन जिन भवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल और चामरों से युक्त जिन प्रतिमायें विराजमान हैं।

उन जिनेन्द्र प्रासादों में श्री देवी व श्रुतदेवी यक्षी एवं सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां भगवान के आजू-बाजू में शोभायमान होती हैं। सब देव गाढ़ भक्ति से जल, चंदन, तंदुल, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से परिपूर्ण नित्य ही उनकी पूजा करते हैं।

चन्द्र के भवनों का वर्णन

इन जिन भवनों के चारों ओर समचतुष्कोण लंबे और नाना प्रकार के विन्यास से रमणीय चन्द्र के प्रासाद होते हैं। इनमें कितने ही प्रासाद मरकत वर्ण के, कितने ही कुंद पुष्प, चन्द्र, हार

एवं वर्फ जैसे वर्ण वाले, कोई सुवर्ण सदृश वर्ण वाले व कोई मूंगा जैसे वर्ण वाले हैं।

इन भवनों में उपपाद मंदिर, स्नानगृह, भूषणगृह, मैथुनशाला, क्रीड़ाशाला, मंत्रशाला एवं आस्थान शालायें (सभाभवन) स्थित हैं। वे सब प्रासाद उत्तम परकोटों से सहित, विचित्र गोपुरों से संयुक्त, मणिमय तोरणों से रमणीय, विविध चित्रमयी दीवालों से युक्त, विचित्र-विचित्र उपवन वापिकाओं से शोभायमान, सुवर्णमय विशाल खंभों से सहित और शयनासन आदि से परिपूर्ण हैं। वे दिव्य प्रासाद धूप की गंध से व्याप्त होते हुये अनुपम एवं शुद्ध रूप, रस, गंध और स्पर्श से विविध प्रकार के सुखों को देते हैं।

तथा इन भवनों में कूटों से विभूषित और प्रकाशमान रत्नकिरण-पंक्ति से संयुक्त ७–८ आदि भूमियां (मंजिल) शोभायमान होती है।

इन चन्द्र भवनों में सिंहासन पर चन्द्र देव रहते हैं। एक चन्द्र देव की ४ अग्रमहिषी (प्रधान देवियां) होती हैं। चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभंकरा, अर्चिमालिनी–इन प्रत्येक देवी के ४–४ हजार परिवार देवियां हैं। अग्रदेवियां विक्रिया से ४-४ हजार प्रमाण रूप बना सकती हैं। एक-एक चन्द्र के परिवार देव-प्रतीन्द्र (सूर्य), सामानिक, तनुरक्ष, तीनों परिषद्, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक, इस प्रकार ८ भेद हैं। इनमें प्रतीन्द्र १ तथा सामानिक आदि संख्यात प्रमाण देव होते हैं। ये देवगण भगवान के कल्याणकों में आया करते हैं।

प० पू० १०८ आचार्य रत्न श्री देशभूषणजी महाराज

जन्म —
कोथली (बेलगांव, महाराष्ट्र)
वि० सं० १९६०
मार्गशिर शुक्ला २

क्षुल्लक दीक्षा — मुनि दीक्षा —
आचार्य श्री जयकीर्तिजी महाराज से
स्थान श्रीअतिशयक्षेत्र-रामटेक (महाराष्ट्र) | वि० सं० १९८४ स्थान कुंथलगिरि

आचार्यपद — सूरत (गुजरात)

राजांगण के बाहर विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से रचित और विचित्र विन्यास रूप विभूति से सहित परिवार देवों के प्रासाद होते हैं।

इन देवों की आयु का प्रमाण

चन्द्रदेव की उत्कृष्ट आयु—१ पल्य और १ लाख वर्ष की है।
सूर्यदेव की ,, ,, —१ पल्य १ हजार वर्ष की है।
शुक्रदेव की ,, ,, —१ पल्य १०० वर्ष की है।
वृहस्पतिदेव की ,, ,, —१ पल्य की है।
बुध, मंगल आदि देवों की ,, —आधा पल्य की है।
ताराओं की ,, —पाव पल्य की है।

तथा ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु अपने २ पति की आयु से आधे प्रमाण होती है।

सूर्य के बिम्ब का वर्णन

सूर्य के विमान ३१४७[illegible] मील के हैं एवं इसमें आधे मोटाई लिये हैं तथा अन्य वर्णन उपर्युक्त प्रकार से चन्द्र के विमानों के सदृश ही है। सूर्य की देवियों के नाम—द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा, अर्चिमालिनी ये चार अग्रमहिषी हैं। इन एक-एक देवियों के चार-चार हजार परिवार देवियां हैं एवं एक-एक अग्रमहिषी विक्रिया से चार-चार हजार प्रमाण रूप बना सकती हैं।

बुध आदि ग्रहों का वर्णन

बुध के विमान स्वर्णमय चमकीले हैं। शीतल एवं मंद किरणों से युक्त हैं। कुछ कम ५०० मील के विस्तार वाले हैं तथा उससे आधे मोटाई वाले हैं। पूर्वोक्त चन्द्र, सूर्य विमानों के सदृश ही इनके विमानो में भी जिन मन्दिर, वेदी, प्रासाद आदि रचनायें हैं। देवी एवं परिवार देव आदि तथा वैभव उनसे कम अर्थात् अपने २ अनुरूप है। २-२ हजार आभियोग्य जाति के देव इन विमानों को ढोते हैं।

शुक्र के विमान उत्तम चांदी से निर्मित २५०० किरणों से युक्त हैं। विमान का विस्तार १००० मील का एवं बाहल्य (मोटाई) ५०० मील की है। अन्य सभी वर्णन पूर्वोक्त प्रकार ही है।

वृहस्पति के विमान स्फटिक मणि से निर्मित सुन्दर मंद किरणों से युक्त कुछ कम १००० मील विस्तृत एवं इससे आधे मोटाई वाले हैं। देवी एवं परिवार आदि का वर्णन अपने २ अनुरूप तथा बाकी मन्दिर, प्रासाद आदि का वर्णन पूर्वोक्त ही है।

मंगल के विमान पद्मराग मणि से निर्मित लाल वर्ण वाले हैं। मंद किरणों से युक्त, ५०० मील विस्तृत, २५० मील बाहल्ययुक्त हैं। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

शनि के विमान स्वर्णमय, ५०० मील विस्तृत एवं २५० मील मोटे हैं। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

नक्षत्रों के नगर विविध-२ रत्नों से निर्मित रमणीय मंद किरणों से युक्त हैं। १००० मील विस्तृत व ५०० मील मोटे हैं। ४-४ हजार वाहन जाति के देव इनके विमानों को ढोते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

ताराओं के विमान उत्तम-२ रत्नों से निर्मित, मंद-२ किरणों से युक्त, १०००, मील विस्तृत, ५०० मील मोटाई वाले हैं। इनके सबसे छोटे से छोटे विमान २५० मील विस्तृत एवं इससे आधे वाहल्य वाले हैं।

सूर्य का गमन क्षेत्र

पहले यह बताया जा चुका है कि जंबूद्वीप १ लाख योजन (१००००० × ४००० = ४०००००००० मील) व्यास वाला है एवं वलयाकार (गोलाकार) है।

सूर्य का गमन क्षेत्र पृथ्वीतल से ८०० योजन (८०० × ४००० — ३२००००० मील) ऊपर जाकर है।

वह इस जंबूद्वीप के भीतर १८० योजन एवं लवण समुद्र में ३३० ४८/६१ योजन है अर्थात् समस्त गमन क्षेत्र ५१० ४८/६१ योजन या २०४३१४७ १३/६१ मील है।

इतने प्रमाण गमन क्षेत्र में १८४ गलियां हैं। इन गलियों में सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं। इस प्रकार जंबूद्वीप में दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा हैं।

इस ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन के गमन क्षेत्र में सूर्य बिम्ब की १-१ गली $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण वाली है। एक गली से दूसरी गली का अन्तराल २-२ योजन का है।

अत: १८४ गलियों का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ × १८४ = १४४ $\frac{४८}{६१}$ योजन हुआ। इस प्रमाण को ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन गमन क्षेत्र में से घटाने पर ५१० $\frac{४८}{६१}$ — १४४ $\frac{४८}{६१}$ = ३६६ योजन कुल गलियों का अंतराल क्षेत्र रहा।

३६६ योजन में एक कम गलियों का अर्थात् गलियों के अन्तर १८३ हैं उसका भाग देने से गलियों के अन्तर का प्रमाण ३६६ ÷ १८३ = २ योजन (८००० मील) का आता है। इस अन्तर में सूर्य की १ गली का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन को मिलाने से सूर्य के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण २ $\frac{४८}{६१}$ योजन (१११४७ $\frac{३३}{६१}$ मील) का हो जाता है।

इन गलियों में एक-एक गली में दोनों सूर्य आमने-सामने रहते हुये १ दिन रात्रि (३० मुहूर्त) में एक गली के भ्रमण को पूरा करते हैं।

दोनों सूर्यों का आपस में अंतराल का प्रमाण

जब दोनों सूर्य अभ्यंतर गली में रहते हैं तब आमने-सामने रहने से सूर्य से दूसरे सूर्य का आपस में अंतर ९९६४० योजन (३९८५६०००० मील) का रहता है एवं प्रथम गली में स्थित सूर्य का मेरू से अंतर ४४८२० योजन (१७९२८०००० मील) का रहता है।

अर्थात्—१ लाख योजन प्रमाण वाले जंबूद्वीप में से जंबूद्वीप संबंधी दोनों तरफ के सूर्य के गमन क्षेत्र को घटाने से १००००० — १८० × २ = ९९६४० योजन आता है।

तथा इसमें मेरू पर्वत का विस्तार घटाकर शेष को आधा करने से मेरू से प्रथम वीथी में स्थित सूर्य का अंतर निकलता है।

$$\frac{९९६४० — १००००}{२} = ४४८२० \text{ योजन } (१७९२८०००० \text{ मील का}$$

होता है।

सूर्य की अभ्यंतर गली की परिधि का प्रमाण

अभ्यंतर (प्रथम) गली की परिधि[1] का प्रमाण ३१५०८९ योजन (१२६०३५६००० मील) है। इस परिधि का चक्कर (भ्रमण)

1. गोल वस्तु के गोल घेरे के आकार को परिधि कहते हैं और वह व्यास से कुछ अधिक तिगुनी ($3\frac{1}{3}$) होती है।

२ सूर्य १ दिन-रात में लगाते हैं। अर्थात्—जब १ सूर्य भरत क्षेत्र में रहता है तब दूसरा सूर्य ठीक सामने ऐरावत क्षेत्र में रहता है। जब १ सूर्य पूर्व विदेह में रहता है, तब दूसरा पश्चिम विदेह में रहता है। इस प्रकार उपर्युक्त अंतर से (६६६४० योजन) गमन करते हुये आधी परिधि को १ सूर्य एवं आधी को दूसरा सूर्य अर्थात् दोनों मिलकर ३० मुहूर्त (२४ घंटे) में १ परिधि को पूर्ण करते हैं।

पहली गली से दूसरी गली की परिधि का प्रमाण १७$\frac{३८}{६१}$ योजन (४३००००० मील) अधिक है। अर्थात् ३१५०८९+१७$\frac{३८}{६१}$=३१५१०६$\frac{३८}{६१}$ योजन होता है। इसी प्रकार आगे-आगे की वीथियों में क्रमशः १७$\frac{३८}{६१}$ योजन अधिक-२ होता गया है, यथा—३१५१०६$\frac{३८}{६१}$+१७$\frac{३८}{६१}$ योजन=३१५१२४$\frac{१५}{६१}$ योजन प्रमाण तीसरी गली की परिधि है। इसी प्रकार बढ़ते-२ मध्य की ९२ वीं गली की परिधि का प्रमाण—३१६७०२ योजन (१२६६८०८००० मील) है। तथैव आगे वृद्धिगत होते हुये अंतिम बाह्य गली की परिधि का प्रमाण—३१८३१४ योजन (१२७३२५६००० मील) है।

दिन-रात्रि के विभाग का क्रम

प्रथम गली में सूर्य के रहने पर उस गली की परिधि (३१५०८९ योजन) के १० भाग कीजिये। एक-एक गली में २-२ सूर्य भ्रमण करते हैं। अतः एक सूर्य के गमन संबंधि ५ भाग हुये।

उस ५ भाग में से २ भागों में अंधकार (रात्रि) एवं ३ भागों में प्रकाश (दिन) होता है। यथा—३१५०८९÷१०=३१५०८ $\frac{९}{१०}$ योजन दसवां भाग (१२६०३५६०० मील) प्रमाण हुआ। एक सूर्य संबंधि ५ भाग परिधि का आधा ३१५०८९÷२=१५७५४४ $\frac{१}{२}$ योजन है। उसमें दो भाग में अंधकार एवं ३ भागों में प्रकाश है।

इसी प्रकार से क्रमशः आगे-आगे की वीथियों में प्रकाश घटते २ एवं रात्रि बढ़ते-२ मध्य की गली में दोनों ही (दिनरात्रि) २ $\frac{१}{२}$—२ $\frac{१}{२}$ भाग में समान रूप से हो जाते हैं। पुनः आगे-आगे की गलियों में प्रकाश घटते-घटते तथा अंधकार बढ़ते-बढ़ते अंतिम बाह्य गली में सूर्य के पहुँचने पर ३ भागों में रात्रि एवं २ भागों में दिन हो जाता है अर्थात् प्रथम गली में सूर्य के रहने से दिन बड़ा एवं अंतिम गली में रहने से छोटा होता है।

इस प्रकार सूर्य के गमन के अनुसार ही भरत-ऐरावत क्षेत्रों में और पूर्व-पश्चिम विदेह क्षेत्रों में दिन रात्रि का विभाग होता रहता है।

छोटे-बड़े दिन होने का विशेष स्पष्टीकरण

श्रावण मास में जब सूर्य पहली गली में रहता है। उस समय दिन १८ मुहूर्त[1] (१४ घंटे २४ मिनट) का एवं रात्रि १२ मुहूर्त

---

१. ४८ मिनट का १ मुहूर्त होता है अतः १८ मुहूर्त को ४८ मिनट से गुणा करके ६० मिनट का भाग देने पर—१८×४८=८६४ मिनट ÷६०=१४ $\frac{२४}{६०}$ अर्थात् १४ घंटे २४ मिनट होते हैं।

(६ घंटे ३६ मिनट) की होती है।

पुनः दिन घटने का क्रम—

जब सूर्य प्रथम गली का परिभ्रमण पूर्ण करके दो योजन प्रमाण अंतराल के मार्ग को उलंघन कर दूसरी गली में जाता है तब दूसरे दिन दूसरी गली में जाने पर परिधि का प्रमाण बढ़ जाने से एवं मेरु से सूर्य का अन्तराल बढ़ जाने से दो मुहूर्त का ६१ वां भाग (१$\frac{३५}{६१}$ मिनट) दिन घट जाता है एवं रात्रि बढ़ जाती है। इसी तरह प्रतिदिन दो मुहूर्त के ६१ वें भाग प्रमाण घटते-घटते मध्यम गली में सूर्य के पहुँचने पर १५ मुहूर्त (१२ घंटे) का दिन एवं १५ मुहूर्त की रात्रि हो जाती है।

तथैव प्रतिदिन २ मुहूर्त के ६१ वें भाग घटते-२ अंतिम गली में पहुँचने पर १२ मुहूर्त (६ घंटे ३६ मिनट) का दिन एवं १८ मुहूर्त (१४ घंटे २४ मिनट) की रात्रि हो जाती है।

जब सूर्य कर्कट राशि में आता है तब अभ्यंतर गली में भ्रमण करता है और जब सूर्य मकर राशि में आता है तब बाह्य गली में भ्रमण करता है।

विशेष—श्रावण मास में जब सूर्य प्रथम गली में रहता है तब १८ मुहूर्त का दिन एवं १२ मुहूर्त की रात्रि होती है। वैसाख एवं कार्तिक मास में जब सूर्य बीचों-बीच की गली में रहता है तब दिन एवं रात्रि १५-१५ मुहूर्त (१२ घन्टे) के होते हैं।

तथैव माघ मास में सूर्य जब अन्तिम गली में रहता है तब १२ मुहूर्त का दिन एवं १८ मुहूर्त की रात्रि होती है।

दक्षिणायन एवं उत्तरायण

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जब सूर्य अभ्यंतर मार्ग (गली) में रहता है, तब दक्षिणायन का प्रारंभ होता है एवं जब १८४ वीं (अन्तिम गली) में पहुंचता है तब उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। अतएव ६ महिने में दक्षिणायन एवं ६ महिने में उत्तरायण होता है।

जब दोनों ही सूर्य अन्तिम गली में पहुंचते हैं तब दोनों सूर्यों का परस्पर में अन्तर अर्थात् एक सूर्य से दूसरे सूर्य के बीच का अन्तराल—१००६६० योजन (४०२६४०००० मील) का रहता है। अर्थात् जंबूद्वीप १ लाख योजन है तथा लवण समुद्र में सूर्य का गमन क्षेत्र ३३० योजन है उसे दोनों तरफ का लेकर मिलाने पर १००००० + ३३० + ३३० = १००६६० योजन होता है। अंतिम गली से अंतिम गली का यही अंतर है।

एक मुहूर्त में सूर्य के गमन का प्रमाण

जब सूर्य प्रथम गली में रहता है तब एक मुहूर्त में ५२५१ २९/६० योजन (२१००५९४३३ १/३ मील) गमन करता है। अर्थात्—

प्रथम गली की परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है। उनमें ६० मुहूर्त का भाग देनें से उपर्युक्त संख्या आती है क्योंकि २ सूर्यों के द्वारा ३० मुहूर्त में १ परिधि पूर्ण होती है। अतः १ परिधि के भ्रमण में कुल ६० मुहूर्त लगते हैं। अतएव ६० का भाग दिया जाता है।

उसी प्रकार जब सूर्य बाह्य गली में रहता है तब बाह्य परिधि में ६० का भाग देने से—३१८३१४ ÷ ६० = ५३०५ १४/६० योजन (२१२२०९३३ १/३ मील) प्रमाण १ मुहूर्त में गमन करता है।

एक मिनट में सूर्य का गमन

एक मिनट में सूर्य की गति ४४७६२३ ११/१८ मील प्रमाण है। अर्थात् १ मुहूर्त की गति में ४८ मिनट का भाग देने से १ मिनट की गति का प्रमाण आता है। यथा २१२२०९३३ १/३ ÷ ४८ = ४४७६२३ ११/१८ योजन ?

अधिक दिन एवं मास का क्रम

जब सूर्य एक पथ से दूसरे पथ में प्रवेश करता है तब मध्य के अन्तराल २ योजन (८००० मील) को पार करते हुये ही जाता है। अतएव इस निमित्त से; १ दिन में १ मुहूर्त की वृद्धि होने से १ मास में ३० मुहूर्त (१ अहोरात्र) की वृद्धि होती है। अर्थात् यदि १ पथ के लांघने में दिन का इकसठवां भाग (१/६१) उपलब्ध होता है। तो १८४ पथों के १८३ अन्तरालों को लांघने में कितना समय लगेगा—१/६१ × १८३ ÷ १ = ३ दिन तथा २ सूर्य संबंधि ६ दिन हुये।

इस प्रकार प्रतिदिन १ मुहूर्त (४८ मिनट) की वृद्धि होने से १ मास में १ दिन तथा १ वर्ष में १२ दिन की वृद्धि हुई एवं इसी क्रम से २ वर्ष में २४ दिन तथा ढाई वर्ष में ३० दिन (१ मास) की वृद्धि होती है तथा ५ वर्ष (१ युग) में २ मास अधिक हो जाते हैं।

सूर्य के ताप का चारों तरफ फैलने का क्रम

सूर्य का ताप मेरू पर्वत के मध्य भाग से लेकर लवण समुद्र के छठे भाग तक फैलता है। अर्थात्—लवण समुद्र का विस्तार २००००० योजन है उसमें छः का भाग देकर १ लाख योजन जंबूद्वीप का आधा ५०००० मिलाने से ($\frac{२०००००}{६}$+५००००) =८३३३३$\frac{१}{३}$ योजन (३३३३३३३३३$\frac{१}{३}$ मील) तक प्रकाश फैलता है। सूर्य का प्रकाश नीचे की ओर चित्रा पृथ्वी की जड़ तक अर्थात् चित्रा पृथ्वी से एक हजार योजन नीचे तक एवं ऊपर सूर्य विम्ब ८०० योजन पर है। अतः १०००+८००= १८०० योजन (७२००००० मील) तक फैलता है और ऊपर की ओर १०० योजन (४००००० मील) तक फैलता है।

लवण समुद्र के छठे भाग की परिधि

लवण समुद्र के छठे भाग की परिधि का प्रमाण ५२७०४६ योजन (२१२८१८४००० मील) है।

सूर्य के प्रथम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण

जब सूर्य अभ्यन्तर गली में रहता है उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप की परिधि १५८११४ ४/५ योजन (६३२४५९२०० मील) है। एवं तम की परिधि का प्रमाण १०५४०९ ५/५ योजन (४२१६३६८०० मील) है। तथा बाह्य गली में ताप की परिधि ९५४९४ १/५ योजन है और तम की परिधि ६३६६२ ४/५ योजन प्रमाण है।

उसी प्रकार मध्यम गली में ताप की परिधि ९५०१० ३/५ योजन एवं तम की परिधि ६३३४० २/५ योजन है।

मेरू पर्वत की परिधि में ९४८६ ३/५ योजन का प्रकाश और ६३२४ ३/५ योजन का अन्धेरा होता है।

सूर्य के मध्यम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण

जब सूर्य मध्यम गली[1] में गमन करता है उस समय ताप और तम की परिधि समान होती है। अर्थात्—

---

१. तिलोयपण्णत्ति शास्त्र में प्रत्येक गली में सूर्य के स्थित रहने पर ताप-तम का प्रमाण निकाला है। (विशेष वहां देखिये)

उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप और तम को परिधि १३१७६१$\frac{१}{२}$ योजन समान रहती है।

इसी समय बाह्य गली में ताप एवं तम की परिधि ७९५७८$\frac{१}{२}$ योजन की समान होती है।

इसी समय अभ्यंतर गली में ताप तथा तम की परिधि ७८३७२$\frac{१}{४}$ योजन की होती है।

एवं मेरू की परिधि ताप तथा तम की ७९०५$\frac{१}{२}$ योजन प्रमाण होती है।

सूर्य के अन्तिम गली में रहने पर ताप-तम का प्रमाण

सूर्य जब अन्तिम गली में गमन करता है उस समय लवण समुद्र के छठे भाग में ताप की परिधि १०५४०९$\frac{१}{५}$ योजन की एवं तम की परिधि १५८११३$\frac{४}{५}$ योजन की होती है।

उसी समय मध्यम गली में ताप की परिधि ६३३४०$\frac{३}{५}$ योजन एवं तम की परिधि ९५०१०$\frac{३}{५}$ योजन की होती है।

उसी समय अभ्यन्तर गली में ताप की परिधि ६३०१७$\frac{४}{५}$ योजन एवं तम की परिधि ९४५२६$\frac{७}{१०}$ योजन की होती है।

एवं उसी समय मेरू की परिधि में ताप ६३२४$\frac{३}{५}$ योजन और तम ९४८६$\frac{३}{५}$ योजन प्रमाण होता है।

चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य के जिनबिंब का दर्शन

जब सूर्य पहली गली में आता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन के ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिन बिंब का दर्शन करते हैं। इस समय सूर्य अभ्यंतर गली की परिधि ३१५०८९ योजन को ६० मुहूर्त में पूरा करता है। इस गली में सूर्य निषध पर्वत पर उदित होता है वहां से उसे अयोध्या नगरी के ऊपर आने में ९ मुहूर्त लगते हैं। अब जब वह ३१५०८९ योजन प्रमाण उस वीथी को ६० मुहूर्त में पूर्ण करता है तब वह ९ मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पूरा करेगा। इस प्रकार त्रैराशिक करने पर :—$\frac{३१५०८९}{६०} \times ९ = ४७२६३\frac{१७}{२०}$ योजन अर्थात् १८९०५३४००० मील होता है।

पक्ष-मास-वर्ष आदि का प्रमाण

जितने काल में एक परमाणु आकाश के १ प्रदेश को लांघता है उतने काल को १ समय कहते हैं। ऐसे असंख्यात समयों की १ आवली होती है। अर्थात्—असंख्यात समयों की १ आवली

संख्यात आवलियों का १ उच्छवास

७ उच्छवासों का १ स्तोक

७ स्तोकों का १ लव

३८½ लवों की १ नाली[1]

---

१. नाली अर्थात् घटिका। २४ मिनट की १ घड़ी होती है उसे ही नाली या घटिका कहते हैं।

२ घटिका का १ मुहूर्त होता है।

इसी प्रकार ३७७३ उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है एवं ३० मुहूर्त[1] का १ दिन-रात होता है अथवा २४ घन्टे का १ दिन-रात होता है।

१५ दिन का १ पक्ष
२ पक्ष का १ मास
२ मास की १ ऋतु
३ ऋतु का १ अयन
२ अयन का १ वर्ष
५ वर्षों का १ युग होता है।

प्रति ५ वर्ष के पश्चात् सूर्य श्रावण कृष्णा १ को पहली गली में आता है।

दक्षिणायन एवं उत्तरायण का क्रम

जब सूर्य श्रावण कृष्णा १ के दिन प्रथम गली में रहता है तब दक्षिणायण होता है एवं उसी वर्ष माघ कृष्णा ७ को उत्तरायन है। तथैव दूसरी वर्ष—

श्रावण कृष्णा १३ को दक्षिणायन एवं माघ शुक्ला ४ को उत्तरायण होता है। तीसरी वर्ष—श्रावण शुक्ला १० को

---

१. ४८ मिनट का १ मुहूर्त होता है इस लिये ३० मुहूर्त के २४ घन्टे होते हैं।

दक्षिणायन, माघकृष्णा १ को उत्तरायण। चौथो वर्ष—श्रावण कृष्णा ७ को दक्षिणायन, माघ कृष्णा १३ को उत्तरायण। पांचवे वर्ष—श्रावण शुक्ला ४ को दक्षिणायन, माघ शुक्ला १० को उत्तरायण होता है।

पुनः छठे वर्ष से उपरोक्त व्यवस्था प्रारम्भ हो जाती है अर्थात्—पुनः श्रावण कृष्णा १ के दिन दक्षिणायन एवं माघ कृष्णा ७ को उत्तरायण होता है। इस प्रकार ५ वर्ष में एक युग समाप्त होता है और छठे वर्ष से नया युग प्रारम्भ होता है। इस प्रकार प्रथम वीथो से दक्षिणायन एवं अन्तिम वाथी से उत्तरायण होता है।

सूर्य के १८४ गलियों के उदय स्थान

सूर्य के उदय निषध और नील पर्वत पर ६३ हरि और रम्यक क्षेत्रों में २ तथा लवण समुद्र में ११९ हैं। ६३+२+११९=१८४ हैं। इस प्रकार १८४ उदय स्थान होते हैं।

चन्द्रमा का विमान, गमन क्षेत्र एवं गलियां

चन्द्र का विमान $\frac{५६}{६१}$ योजन (३६७२ $\frac{८}{६१}$ मील) व्यास का है। सूर्य के समान चन्द्रमा का भी गमन क्षेत्र ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन है। इस गमन क्षेत्र में चन्द्र की १५ गलियां हैं। इनमें वह प्रतिदिन क्रमशः एक-एक गली में गमन करता है। चन्द्र बिंब के प्रमाण $\frac{५६}{६१}$ योजन को ही १–१ गली हैं अत. समस्त गमन क्षेत्र में चन्द्र

बिंब प्रमाण १५ गलियों को घटाने से एवं शेष में १ कम (१४) गलियों का भाग देने से एक चन्द्र गली से दूसरी चन्द्र गली के अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

५१०$\frac{४८}{६१}$−$\frac{५६}{६१}$ × १५=५१०$\frac{४८}{६१}$−१३$\frac{४७}{६१}$=४९७$\frac{१}{६१}$ योजन

इसमें १४ का भाग देने से−४९७$\frac{१}{६१}$ ÷ १४=३५$\frac{२१४}{४२७}$ योजन (१४२००४$\frac{२९२}{४२७}$ मील) प्रमाण एक चन्द्रगली से दूसरी चन्द्र गली का अन्तराल है।

इसी अन्तर में चन्द्र बिंब के प्रमाण को जोड़ देने से चन्द्र के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण आता है। यथा−३५$\frac{२१४}{४२७}$+$\frac{५६}{६१}$=३६$\frac{१७९}{४२७}$ योजन अर्थात् १४५६५३$\frac{१५६}{४२७}$ मील प्रतिदिन गमन करता है।

इस प्रकार प्रतिदिन दोनों ही चन्द्रमा १−१ गलियों में आमने-सामने रहते हुये १−१ गली का परिभ्रमण पूरा करते हैं।

चन्द्र को १ गली के पूरा करने का काल

अपनी गलियों में से किसी भी एक गली में संचार करते हुये चन्द्र को उस परिधि को पूरा करने में ६२$\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। अर्थात् एक चन्द्र कुछ कम २५ घन्टे में १ गली का भ्रमण करता है। सूर्य को १ गली के भ्रमण में २४ घन्टे एवं चन्द्र को १ गली के भ्रमण में कुछ कम २५ घन्टे लगते हैं।

चन्द्र का १ मुहूर्त में गमन क्षेत्र

चन्द्रमा की प्रथम वीथी (गली) ३१५०८९ योजन की है

उसमें एक गली को पूरा करने का काल $६२\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त का भाग देने से १ मुहूर्त की गति का प्रमाण आता है। यथा—३१५०८९ $\div ६२\frac{२३}{२२१} = ५०७३\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन एवं ४००० से गुणा करके इसका मील बनाने पर—$२०२९४२५६\frac{४९६}{५४९}$ मील प्रमाण एक मुहूर्त (४८ मिनट) में चन्द्रमा गमन करता है।

१ मिनट में चन्द्रमा का गमन क्षेत्र

इस मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र के मील में ४८ मिनट का भाग देने से १ मिनट की गति का प्रमाण आ जाता है। यथा—$२०२९४२५६\frac{४९६}{५४९} \div ४८ = ४२२७९७\frac{३१}{१६४७}$ मील होता है। अर्थात् चन्द्रमा १ मिनट में इतने मील गमन करता है।

द्वितीयादि गलियों में स्थित चन्द्र का गमन क्षेत्र

प्रथम गली में स्थित चन्द्र की १ मुहूर्त में गति $५०७३\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन है। चन्द्र जब दूसरी गली में पहुंचता है तब इसी प्रमाण में $३\frac{५}{७}$ योजन और मिला देने से द्वितीय गली में स्थित चन्द्र के १ मुहूर्त की गति का प्रमाण होता है। इसी प्रकार आगे-आगे की १३ गलियों तक भी $३\frac{५}{७}$ योजन अधिक २ करने से मुहूर्त प्रमाण गति का प्रमाण आता है।

मध्यम गली में चन्द्र के पहुंचने पर १ मुहूर्त की गति का प्रमाण ५१०० योजन है।

एवं बाह्य गलो में चन्द्र के पहुंचने पर १ मुहूर्त की गति का प्रमाण ५१२६ योजन (२०५०४००० मील) होता है। विशेष—५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन के क्षेत्र में ही सूर्य की १८४ गलियां एवं चन्द्र की १५ गलियां हैं। अतएव सूर्य की गलियों का अन्तराल दो-दो योजन का एवं चन्द्र की प्रत्येक गलियों का अन्तराल ३५$\frac{२१४}{४२७}$ योजन का है।

सूर्य १ गली को ६० मुहूर्त में पूरी करते हैं। परन्तु चन्द्र १ गली को ६२$\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त में पूरा करते हैं।

कृष्ण पक्ष-शुक्ल पक्ष का क्रम

जब यहां मनुष्य लोक में चन्द्र बिंब पूर्ण दिखता है। उस दिवस का नाम पूर्णिमा है। राहुग्रह चन्द्र विमान के नीचे गमन करता है और केतुग्रह सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। राहु और केतु के विमानों के ध्वजा दण्ड के ऊपर चार प्रमाणांगुल (२००० उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर जाकर चन्द्रमा और सूर्य के विमान हैं। राहु और चन्द्रमा अपनी २ गलियों को लांघकर क्रम से जम्बूद्वीप की आग्नेय और वायव्य दिशा से अगली-अगली गली में प्रवेश करते हैं। अर्थात् पहली से दूसरी, दूसरी से तीसरी आदि गली में प्रवेश करते हैं।

पहली से दूसरी गली में प्रवेश करने पर चन्द्र मण्डल के १६ भागों में से १ भाग राहु के गमन विशेष से आच्छादित होता हुआ दिखाई देता है।

इस प्रकार राहु प्रतिदिन एक-एक मार्ग में चन्द्रबिंब की १५ दिन तक एक-एक कलाओं को ढकता रहता है। इस प्रकार राहुबिंब के द्वारा चन्द्र की १-१ कला का आवरण करने पर जिस मार्ग में चन्द्र की १ ही कला दीखती है वह अमावस्या का दिन होता है।

फिर वह राहु प्रतिपदा के दिन से प्रत्येक गली में १-१ कला को छोड़ते हुये पूर्णिमा को पन्द्रहों कलाओं को छोड़ देता है तब चन्द्र बिंब पूर्ण दीखने लगता है। उसे ही पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार कृष्णपक्ष एवं शुक्ल पक्ष का विभाग हो जाता है।

चन्द्रग्रहण–सूर्यग्रहण का क्रम

इस प्रकार ६ मास में पूर्णिमा के दिन चन्द्र विमान पूर्ण आच्छादित हो जाता है उसे चन्द्रग्रहण कहते हैं तथैव छह मास में सूर्य के विमान को अमावस्या के दिन केतु का विमान ढक देता है उसे सूर्य ग्रहण कहते हैं।

विशेष—ग्रहण के समय दीक्षा, विवाह आदि शुभ कार्य वर्जित माने हैं तथा सिद्धांत ग्रन्थों के स्वाध्याय का भी निषेध किया है।

सूर्य चन्द्रादिकों का तीव्र-मन्द गमन

सबसे मन्द गमन चन्द्रमा का है। उससे शीघ्र गमन सूर्य का

है। उससे तेज गमन ग्रहों का, उससे तीव्र गमन नक्षत्रों का एवं सबसे तीव्र गमन ताराओं का है।

एक चन्द्र का परिवार

इन ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा इन्द्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है। अतः एक चन्द्र (इन्द्र) के–१ सूर्य (प्रतीन्द्र), ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६ हजार ९७५ कोड़ाकोड़ी तारे ये सब परिवार देव हैं।

कोड़ाकोड़ी का प्रमाण

१ करोड़ को १ करोड़ से गुणा करने पर कोड़ाकोड़ी संख्या आती है।

१००००००० × १००००००० = १०,००००००००००००००

१ तारे से दूसरे तारे का अन्तर

एक तारे से दूसरे तारे का जघन्य अन्तर १४२ ६/७ मील अर्थात् १/७ महाकोश है इसका लघु कोश ५०० गुणा होने से ५००/७ हुआ उसका मील बनाने पर ५००/७ × २ = १४२ ६/७ हुआ।

मध्यम अन्तर—५० योजन (२०००० मील) का है एवं उत्कृष्ट अन्तर—१०० योजन (४०००० मील) का है।

जंबूद्वीप संबंधि तारे

जंबूद्वीप में दोचन्द्र संबंधि परिवार तारे १३३ हजार ९५० कोड़ाकोड़ी प्रमाण हैं। उनका विस्तार जंबूद्वीप के ७ क्षेत्र एवं ६ पर्वतों में है देखिये चार्ट—

क्षेत्र एवं पर्वत	तारों की संख्या कोड़ाकोड़ी से
भरत क्षेत्र में	७०५ कोड़ाकोड़ी तारे
हिमवन पर्वत में	१४१० ,, ,,
हेमवत क्षेत्र में	२८२० ,, ,,
महाहिमवन पर्वत में	५६४० ,, ,,
हरि क्षेत्र में	११२८० ,, ,,
निषध पर्वत में	२२५६० ,, ,,
विदेह क्षेत्र में	४५१२० ,, ,,
नील पर्वत में	२२५६० ,, ,,
रम्यक क्षेत्र में	११२८० ,, ,,
रुक्मि पर्वत में	५६४० ,, ,,

हैरण्यवत क्षेत्र में	२८२० कोड़ीकोड़ी तारे
शिखरी पर्वत में	४११० ,, ,,
ऐरावत क्षेत्र में	७०५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं

कुल जोड़—१३३९५० कोड़ाकोड़ी हैं।

इस प्रकार २ चन्द्र संबंधि संपूर्ण ताराओं का कुल जोड़ १३३९५०००००००००००००००० प्रमाण है।

ध्रुव ताराओं का प्रमाण

जो अपने स्थान पर ही रहते हैं। प्रदक्षिणा रूप से परिभ्रमण नहीं करते हैं उन्हें ध्रुव तारे कहते हैं।

वे जंबूद्वीप में ३६, लवण समुद्र में १३९, धातकीखण्ड में १०१०, कालोदधि समुद्र में ४११२० एवं पुष्करार्ध द्वीप में ५३२३० हैं। ढाई द्वीप के आगे सभी ज्योतिष्क देव एवं तारे स्थिर ही हैं।

ढाई द्वीप एवं दो समुद्र संबंधि सूर्य चन्द्रादिकों का प्रमाण

द्वीप-समुद्र में	चन्द्रमा	सूर्य
जंबूद्वीप में	२	२
लवण समुद्र	४	४
घात की खण्ड	१२	१२
कालोदधि समुद्र	४२	४२
पुष्करार्द्ध द्वीप	७२	७२

नोट—सर्वत्र ही १-१ चन्द्र १-१ सूर्य(प्रतीन्द्र) ८८-८८ ग्रह, २८-२८ नक्षत्र एवं ६६ हजार ९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं। इतने प्रमाण परिवार देव समझना चाहिये।

इस ढाई द्वीप के आगे-आगे असंख्यात द्वीप एवं समुद्र पर्यंत दूने-दूने चन्द्रमा एवं दूने-दूने सूर्य होते गये हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व के ही ज्योतिक देवों का भ्रमण

मानुषोत्तर पर्वत से इधर उधर के ही ज्योतिर्वासी देव गण

हमेशा ही मेरू की प्रदक्षिणा देते हुये गमन करते रहते हैं और इन्हीं के गमन के क्रम से दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर आदि का विभाग रूप व्यवहार काल जाना जाता है।

२८ नक्षत्रों के नाम

(१) कृत्तिका (२) रोहिणी (३) मृगशीर्षा (४) आर्द्रा (५) पुनर्वसू (६) पुष्य (७) आश्लेषा (८) मघा (९) पूर्वाफाल्गुनी (१०) उत्तराफाल्गुनी (११) हस्त (१२) चित्रा (१३) स्वाति (१४) विशाखा (१५) अनुराधा (१६) ज्येष्ठा (१७) मूल (१८) पूर्वाषाढ़ा (१९) उत्तराषाढ़ा (२०) अभिजित् (२१) श्रवण (२२) घनिष्ठा (२३) शतभिषक (२४) पूर्वाभाद्रपदा (२५) उत्तराभाद्रपदा (२६) रेवती (२७) अश्विनी (२८) भरिणी

नक्षत्रों की गलियां

चन्द्रमा की १५ गलियाँ हैं। उनके मध्य में २८ नक्षत्रों की ८ ही गलियाँ हैं।

चन्द्र की प्रथम गली में—अभिजित, श्रवण, घनिष्ठा शतभिषज्, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, भरिणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तरा फाल्गुनी ये १२ नक्षत्र संचार करते हैं।

तृतीय गली में पुनर्वसू एवं मघा संचार करते हैं।

छठी गली में—कृत्तिका का गमन होता है।

सातवीं गली में—रोहिणी तथा चित्रा का गमन होता है।

आठवीं गली में—विशाखा,

दसवीं गली में—अनुराधा,

ग्यारहवीं गली में—ज्येष्ठा,

एवं पंद्रहवीं गली में—हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य तथा आश्लेषा नामक शेष ८ नक्षत्र संचार करते हैं। ये नक्षत्र क्रमशः अपनी-अपनी गली में ही भ्रमण करते हैं।

सूर्य–चन्द्र के समान अन्य-अन्य गलियों में भ्रमण नहीं करते हैं।

नक्षत्रों की १ मुहूर्त में गति का प्रमाण

ये नक्षत्र अपनी १ गली को ५९ ३०७/३६७ मुहूर्त में पूरी करते हैं। अतः प्रथम परिधि ३१५०८९ में ५९ ३०७/३६७ का भाग देने से १ मुहूर्त के गमन क्षेत्र का प्रमाण आ जाता है। यथा—३१५०८९ ÷ ५९ ३०७/३६७ मुहूर्त = ५२६५ १८२६३/२१९६० योजन पर्यन्त पहली गली में रहने वाले प्रत्येक नक्षत्र १ मुहूर्त में गमन करते हैं।

आगे-आगे की गलियों की परिधि में उपर्युक्त इस पूर्ण-परिधि के गमन क्षेत्र (५९ ३०७/३६७ मुहूर्त) का भाग देने से मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र का प्रमाण आ जाता है।

विशेष—चन्द्र को १ परिधि को पूर्ण करने में ६२ २३/२२१

मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। उसी वीथी की परिधि को भ्रमण द्वारा पूर्ण करने में सूर्य को ६० मुहूर्त लगते हैं तथा नक्षत्र गणों को उसी परिधि को पूर्ण करने में ५९ ३०७/३६७ मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। क्योंकि चन्द्रमा मंदगामी है। चन्द्रमा से तेज गति सूर्य की है। सूर्य से अधिक तीव्र गति ग्रहों की है। ग्रहों से भी तीव्र गति नक्षत्रों की एवं इन सबसे तीव्र गति तारागणों की मानी है।

लवण समुद्र का वर्णन

एक लाख योजन व्यास वाले इस जंबूद्वीप को घेरे हुये वलयाकार २ लाख योजन व्यास वाला लवण समुद्र है। उसका पानी अनाज के ढेर के समान शिखाऊ ऊंचा उठा हुआ है। बीच में गहराई १००० योजन की है। समतल से जल की ऊंचाई अमावस्या के दिन ११००० योजन की रहती है तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से बढ़ते-बढ़ते ऊंचाई पूर्णिमा के दिन १६००० योजन की हो जाती है। पुनः कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से घटते-घटते ऊंचाई क्रमशः अमावस्या के दिन ११००० योजन की रह जाती है।

तट से (किनारे से) ९५ योजन आगे जाने पर गहराई एक योजन की है। इस प्रकार क्रमशः ९५-९५ योजन बढ़ते जाने पर १-१ योजन की गहराई अधिक-२ बढ़ती जाती है। इस प्रकार ९५००० योजन जाने पर गहराई १००० योजन की हो जाती है। यही क्रम उस तट से भी जानना चाहिये। इस प्रकार

इस लवण समुद्र के बीचों बीच में १०००० योजन तक गहराई १०००० योजन की समान है।

लवण समुद्र में ज्योतिष्क देवों का गमन

लवण समुद्र के ज्योतिर्वासी देवों के विमान पानी के मध्य में होकर ही घूमते रहते हैं क्योंकि लवण समुद्र के पानी की सतह ज्योतिषी देवों के गमन मार्ग की सतह से बहुत ऊंची है। अर्थात् विमान ७९० से ९०० योजन की ऊंचाई तक ही गमन करते हैं और पानी की सतह ११००० योजन ऊंची है।

जंबूद्वीप की तटवर्ती वेदी की ऊंचाई ८ योजन (३२००० मील) है तथा चौड़ाई ४ योजन (१६००० मील) है। पानी की सतह ११००० योजन से बढ़ते-बढ़ते १६००० योजन तक हो जाती है।

इस प्रकार समुद्र का जल तट से ऊंचा होने पर भी अपनी मर्यादा में ही रहता है। कभी भी तट का उल्लंघन करके बाहर नहीं आता है। इसलिये मर्यादा का उलंघन न करने वालों को समुद्र की उपमा दी जाती है।

आर्य खण्ड में जो समुद्र हैं वे उप समुद्र हैं यह लवण समुद्र नहीं हैं। और आजकल जिसे सिलोन अर्थात् लंका कहते हैं यह रावण की लंका नहीं है। रावण की लंका तो लवण समुद्र में है। इस लवण समुद्र में गौतम द्वीप, हंस द्वीप, वानर द्वीप, लंका द्वीप आदि अनेक द्वीप अनादि निधन बने हुये हैं।

अन्तर्द्वीपों का वर्णन

इस लवण समुद्र के दोनों तटों पर २४ अन्तर्द्वीप हैं। (चार दिशाओं के ४ द्वीप, ४ विदिशाओं के ४ द्वीप, दिशा-विदिशा की ८ अन्तरालों के ८ द्वीप, हिमवन और शिखरी पर्वत के दोनों तटों के ४ और भरत, ऐरावत के दोनों विजयार्द्धों के दोनों तटों के ४ इस प्रकार :—४+४+८+४+४=२४ हुये।)

ये २४ अन्तर्द्वीप लवण समुद्र के इस तटवर्ती हैं एवं उस तट के भी २४ तथा कालोदधि समुद्र के उभयतट के ४८, सभी मिलकर ९६ अन्तर्द्वीप कहलाते हैं। इन्हें ही कुभोग भूमि कहते हैं।

कुभोग भूमियां मनुष्य का वर्णन

इन द्वीपों में रहने वाले मनुष्य, कुभोग भूमियां कहलाते हैं। इनकी आयु असंख्यात वर्षों की होती है।

पूर्व दिशा में रहने वाले मनुष्य—एक पैर वाले होते हैं।

पश्चिम ,, ,, ,, —पूंछ वाले होते हैं।

दक्षिण ,, ,, ,, —सींग वाले होतेहैं।

उत्तर ,, ,, ,, —गूंगे होते हैं।

एवं विदिशा आदि संबंधि सभी कुभोग भूमियां कुत्सित रूप वाले ही होते हैं।

ये मनुष्य सुभोग भूमिवत् युगल ही जन्म लेते हैं और युगल ही मरते हैं। इनको शरीर संबंधि कोई कष्ट नहीं होता है। कोई-२ वहां की मधुर मिट्टी का भक्षण करते हैं तथा अन्य मनुष्य वहां के वृक्षों के फल फूल आदि का भक्षण करते हैं।

उनका कुरूप होना कुपात्र दान का फल है।

लवण समुद्र के ज्योतिष्क देवों का गमन क्षेत्र

लवण समुद्र में ४ सूर्य एवं ४ चन्द्रमा हैं। जंबूद्वीप के समान ही ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण वाले वहां पर दो गमन क्षेत्र हैं। दो-दो सूर्य एक-एक गमन क्षेत्र में भ्रमण करते हैं।

यहां के समान ही वहां पर ५१० ४८/६१ योजन में १८४ गलियां हैं। उन गलियों में क्रम से भ्रमण करते हुये सतत ही मेरू की प्रदक्षिणा के क्रम से हो भ्रमण करते हैं।

जंबूद्वीप की वेदी से लवण समुद्र में ४९९९९ ३७/६१ योजन (१९,९९,९८,४२६ १४/६१ मील) जाने पर प्रथम गमन क्षेत्र की पहलो परिधि आतो है।

इस पहली गली से ९९९९९ १३/६१ योजन (३९९९९६८५२ २८/६१ मील) जाने पर दूसरे गमन क्षेत्र को पहली गली आती है। यहो एक सूर्य से दूसरे सूर्य के बीच का अन्तराल है लवण समुद्र के बाह्य तट से ४९९९९ ३७/६१ योजन इधर (भीतर) ही दूसरे गमन क्षेत्र की प्रथम गली आतो है। अर्थात्—

जंबूद्वीप की वेदी से प्रथम सूर्य का अन्तर ४९९९९ ३७/६१ योजन है तथा सूर्य का बिंब ४८/६१ योजन का है। इस सूर्य की प्रथम गली से दूसरे सूर्य की प्रथम गली का अन्तर ९९९९९ १३/६१ योजन है एवं यहां भी प्रथम गली में सूर्य बिंब का विस्तार ४८/६१ योजन है। इसके आगे लवण समुद्र की अन्तिम वेदी तक ४९९९९ ३७/६१ योजन है यथा—४९९९९ ३७/६१ + ४८/६१ + ९९९९९ १३/६१ + ४८/६१ + ४९९९९ ३७/६१ = २००००० । ऐसे २ लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है। १-१ गमन क्षेत्र में सूर्य की १८४-१८४ गलियां एवं चन्द्रमा की १५—१५ गलियां हैं प्रत्येक सूर्य आमने सामने रहते हुये ६० मुहूर्त में १—१ परिधि को पूरा करते हैं। जंबूद्वीप के समान ही वहां भी दक्षिणायन एवं उत्तरायण की व्यवस्था है। अन्तर केवल इतना ही है कि—जंबूद्वीप की अपेक्षा लवण समुद्र की गलियों की परिधियां अधिक-अधिक बड़ी हैं। अतः सूर्य चन्द्रादिकों का मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र भी अधिक-अधिक होता गया है।

धातकी खण्ड के सूर्य चन्द्रादि का वर्णन

धातकी खण्ड का व्यास ४ लाख योजन का है। इसमें १२ सूर्य एवं १२ चन्द्रमा हैं। ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण वाले यहां पर ६ गमन क्षेत्र हैं। एक-एक गमन क्षेत्रों में पूर्ववत् २-२ सूर्य-चन्द्र परिभ्रमण करते हैं।

जंबूद्वीप के समान ही इन एक-एक गमन क्षेत्रों में सूर्य की

१८४-१८४ गलियां एवं चन्द्र की १५-१५ गलियाँ हैं। गमनागमन आदि क्रम सब यहीं के समान हैं।

लवण समुद्र की वेदी से (तट से) ३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४}{६}\frac{४}{६}$ योजन जाकर प्रथम सूर्य की प्रथम परिधि है। सूर्य विंव का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन छोड़ कर आगे—६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ योजन जाकर दूसरे सूर्य की प्रथम परिधि है। यहां पर सूर्य विंव का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन छोड़ कर पुनः आगे ६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ योजन पर तृतीय सूर्य की प्रथम परिधि है। इस क्रम से छठे सूर्य के विंव के बाद ३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४}{६}\frac{४}{६}$ योजन पर धातकी खण्ड की अन्तिम तट वेदी है।

यथा—३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४}{६}\frac{४}{६}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ६६६६५-$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ६६६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ६६-६६५$\frac{१}{१}\frac{६}{८}\frac{१}{३}$ + $\frac{४८}{६१}$ + ३३३३२$\frac{३}{३}\frac{४}{६}\frac{४}{६}$ = ४००००० का धातकी खण्ड द्वीप है। यहां की भी गलियों की परिधियां बहुत ही बड़ी २ होती गई हैं। अतः यहां पर सूर्य की गति बहुत ही तीव्र हो गई है। यहां के ३ वलय के ६ सूर्य-चन्द्र सुमेरु की ही प्रदक्षिणा देते हुये भ्रमण करते हैं। बाकी के ३ वलय के सूर्य चन्द्र धातकी खण्ड संबंधि दो मेरु सहित सुमेरु की अर्थात् तीनों मेरुवों की प्रदक्षिणा करते हुये भ्रमण करते हैं।

कालोदधि के सूर्य, चन्द्रादिकों का वर्णन

कालोदधि समुद्र का व्यास ८ लाख योजन का है। यहाँ पर

४२ सूर्य एवं ४२ चन्द्रमा हैं। यहां पर ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण वाले २१ गमन क्षेत्र अर्थात् वलय हैं। यहां पर भी प्रत्येक वलय में २-२ सूर्य एवं चन्द्र तथा उनकी १८४-१८४ एवं १५-१५ गलियां हैं। मात्र परिधियां बहुत ही बड़ी २ होने से गमन अति शीघ्र रूप होता है।

धातकी खण्ड की अन्तिम तट वेदी से १९०४७$\frac{२८९}{१२८१}$ योजन जाकर प्रथम सूर्य का प्रथम वलय है। वहां $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण सूर्य बिंब के प्रमाण को छोड़ कर आगे ३८०९४$\frac{५७८}{१२८१}$ योजन जाकर द्वितीय सूर्य की प्रथम गली है। अनंतर इतने-इतने अन्तराल से ही २१ वलय पूर्ण होने पर १९०४७८$\frac{२८९}{१२८१}$ योजन जाकर कालोदधि समुद्र की अन्तिम तट वेदी है। अतः २१ वलयों के अन्तरालों का (प्रत्येक ३८०९४$\frac{५७८}{१२८१}$ योजन प्रमाण वाली) तथा वेदी से प्रथम वलय एवं अन्तिम वलय से अन्तिम वेदी का १९०४७$\frac{२८९}{१२८१}$ योजन प्रमाण एवं २१ बार सूर्य बिंब के $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण का जोड़ करने में ८,००००० योजन प्रमाण विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है।

पुष्करार्ध द्वीप के सूर्य, चन्द्र

पुष्करवर द्वीप १६ लाख योजन का है। उसमें बीच में वलयाकार (चूड़ी के आकार वाला) मानुषोत्तर पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत के इस तरफ ही मनुष्यों के रहने के क्षेत्र हैं। इस आधे पुष्करवर द्वीप में भी धातकी खण्ड के समान दक्षिण और उत्तर दिशा में दो इष्वाकार पर्वत हैं। जो एक ओर से

कालोदधि समुद्र को छूते हैं एवं दूसरी ओर मानुषोत्तर पर्वत का स्पर्श करते हैं। यहां पर भी पूर्व एवं पश्चिम में १–१ मेरू होने से २ मेरू हैं तथा भरत क्षेत्रादि क्षेत्र एवं हिमवन् पर्वत आदि पर्वतों की भी संख्या दूनी-दूनी है।

मध्य में मानुषोत्तर पर्वत के निमित्त से इस द्वीप के दो भाग हो जाने से ही इस आधे भाग को पुष्करार्ध कहते हैं।

इस पुष्करार्ध द्वीप में ७२ सूर्य एवं ७२ चन्द्रमा हैं। इनके ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण वाले ३६ गमन क्षेत्र (वलय) हैं। प्रत्येक में २-२ सूर्य एवं २-२ चन्द्र हैं। एक-एक वलय में १८४-१८४ सूर्य की गलियाँ तथा १५-१५ चन्द्र की गलियां हैं। १८ वलयों के सूर्य चन्द्र आदि ३ मेरुवों (१ जंबूद्वीप संबंधि एवं २ धातकी खण्ड संबंधि) की ही प्रदक्षिणा करते हैं। शेष १८ वलय के सूर्य, चन्द्रादि २ पुष्करार्ध के मेरू सहित पांचों ही मेरुवों की सतत प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

विशेष—जदूद्वीप के बीचोंबीच में १ सुमेरू पर्वत है। धातकी खण्ड में विजय, अचल नाम के दो मेरू हैं और वहां १२ सूर्य १२ चन्द्रमा हैं, उनके ६ वलय हैं। जिनमें ३ वलय, दोनों मेरुवों के इधर और ३ वलय मेरुवों के उधर हैं। इसलिए—जंबूद्वीप के २ सूर्य एवं २ चन्द्र, लवण समुद्र के ४ सूर्य, ४ चन्द्र, तथा धातकी खण्ड के मेरुवों के इधर के ३ वलय के ६ सूर्य व ६ चन्द्र सपरिवार जंबूद्रीपस्थ १ सुमेरू पर्वत की ही प्रदक्षिणा देते हैं। आगे पुष्करार्ध में मंदर और विद्युन्माली नाम के दो मेरू हैं। कालोदधि समुद्र में ४२ सूर्य ४२ चन्द्रमा हैं उनके २१ गमन

क्षेत्र हैं तथा पुष्करार्ध में ७२ सूर्य एवं ७२ चन्द्रमा हैं। उनके ३६ वलय में १८ वलय तो दोनों मेरूवों के इधर एवं १८ वलय मेरूवों के उधर हैं। अत: धातकी खण्ड के ३ वलय के ६ सूर्य ६ चन्द्र, कालोदधि के ४२ सूर्य ४२ चन्द्र एवं पुष्करार्ध के मेरू के इधर के १८ वलय के ३६ सूर्य ३६ चन्द्र सपरिवार जंबूद्वीपस्थ १ सुमेरू पर्वत और धातकी खण्ड के दो मेरू इस प्रकार तीन मेरू की ही प्रदक्षिणा देते हैं। किन्तु पुष्करार्ध के २ मेरूवों के उधर के १८ वलय के ३६ सूर्य, ३६ चन्द्र सपरिवार पाँचों [ही मेरूवों की प्रदक्षिणा करते हैं। इस प्रकार पांच मेरूवों की प्रदक्षिणा का क्रम है।

कालोदधि समुद्र की वेदो से सूर्य का अन्तराल ११११० $\frac{७}{५}\frac{८}{८}\frac{८}{९}$ योजन है तथा प्रथम वलय के सूर्य से द्वितोय वलय के सूर्य का अन्तराल २२२२१ $\frac{३}{५}\frac{३}{८}\frac{६}{९}$ योजन का है।

इसो प्रकार प्रत्येक वलय के सूर्य से अगले वलय के सूर्य का अंतराल २२२२१ $\frac{३}{५}\frac{३}{८}\frac{६}{९}$ योजन है तथा अन्तिम वलय के सूर्य से मानुषोत्तर पर्वत का अंतराल ११११० $\frac{७}{५}\frac{८}{८}\frac{८}{९}$ योजन का है अतएव पैंतीस बार २२२२१ $\frac{३}{५}\frac{३}{८}\frac{६}{९}$ की संख्या को, २ बार ११११० $\frac{७}{५}\frac{८}{८}\frac{८}{९}$ संख्या को एवं ३६ बार सूर्य बिंब प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ की संख्या को रख कर जोड़ देने से ८ लाख प्रमाण पुष्करार्ध द्वीप का प्रमाण आ जाता है। यथा—२२२२१ $\frac{३}{५}\frac{३}{८}\frac{६}{९}$ × ३५ = ७७७७५० $\frac{१}{५}\frac{३}{८}\frac{२}{९}$ एवं ११११० $\frac{७}{५}\frac{८}{८}\frac{८}{९}$ × २ = २२२२१ $\frac{३}{५}\frac{३}{८}\frac{६}{९}$ तथा $\frac{४८}{६१}$ × ३६ = २८ $\frac{२०}{६१}$ कुल = ८००००० हुआ।

विशेष—पुष्करार्ध द्वीप की बाह्य परिधि—१,४२,३०,२४९ योजन की है। इससे कुछ कम वहां के सूर्य के अन्तिम गली की परिधि होगी। अतः इसमें ६० मुहूर्त का भाग देने से २,७०,५०४$\frac{९}{६०}$ योजन प्रमाण हुआ। वहां के सूर्य के एक मुहूर्त की गतिका यह प्रमाण है।

अर्थात्—जब सूर्य जंबूद्वीप में प्रथम गली में है तब उसका १ मुहूर्त में गमन करने का प्रमाण २१०,०५९३३$\frac{१}{३}$ मील होता है तथा पुष्करार्ध के अन्तिम वलय की अन्तिम गली में वहां के सूर्य का १ मुहूर्त में गमन—९४,८६,८३,२६६$\frac{२}{३}$ मील के लगभग है।

मनुष्य क्षेत्र का वर्णन

मानुषोत्तार पर्वत के इधर-उधर ४५ लक्ष योजन तक के क्षेत्र में ही मनुष्य रहते हैं। अर्थात्—

जंबूद्वीप का विस्तार	१ लक्ष	योजन
लवण समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	४ ,,	,,
धातकी खण्ड के दोनों ओर का विस्तार	८ ,,	,,
कालोदधि समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	१६ ,,	,,
पुष्करार्ध द्वीप के दोनों ओर का विस्तार	१६ ,,	,,

जंबूद्वीप को वेष्टित करके आगे-आगे द्वीप समुद्र होने से दूसरी तरफ से भी लवण समुद्र आदि के प्रमाण को लेने से १+२+४+८+८+८+८+४+२=४५००००० योजन होते हैं।

मानुषोत्तार पर्वत के बाहर मनुष्य नहीं जा सकते हैं। आगे-आगे असंख्यात द्वीप समुद्रों तक अर्थात् अन्तिम स्वयंभूरमण

समुद्र पर्यन्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पाये जाते हैं। वहां तक असंख्यातों व्यन्तर देवों के आवास भी बने हुये हैं सभी देवगण वहां गमनागमन कर सकते हैं।

मध्य लोक १ राजू प्रमाण है। मेरु के मध्य भाग से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक आधा राजू होता है। अर्थात् आधे का आधा (१/४) राजू स्वयंभूरमण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी तक होता है और १/४ राजू में स्वयम्भूरमण द्वीप व सभी असंख्यात द्वीप समुद आ जाते हैं।

अढाई द्वीप के चन्द्र (परिवार सहित)

द्वीप, समुद्रों के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारे
जम्बू द्वीप में	२	२	१७६	५६	६६९७५×२ कोड़ा कोड़ी
लवण समुद्र में	४	४	३५२	११२	६६९७५×४ ,,
धातकी खंड में	१२	१२	१०५६	३३६	६६९७५×१२,,
कालोदधि समुद्र में	४२	४२	३६९६	११७६	६६९७५×४२,,
पुष्करार्ध में	७२	७२	६३३६	२०१६	६६९७५×७२,,
कुल योग	१३२	१३२	११६१६	३६९६	=८८४०७०० कोड़ा कोड़ी

जम्बूद्वीपादि के नाम एवं उनमें क्षेत्रादि व्यवस्था

जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत के उत्तर दिशा में उत्तर-कुरु में १ जम्बू (जामुन) का वृक्ष है। उसी प्रकार धातकी खण्ड में १ धातकी (आंवला) का वृक्ष है। तथैव पुष्करार्ध में पुष्कर वृक्ष है। ये विशाल पृथ्वीकायिक वृक्ष हैं। इन्हीं वृक्षों के नाम से उपलक्षित नाम वाले ये द्वीप हैं।

जिस प्रकार जम्बूद्वीप में क्षेत्र पर्वत और नदियां हैं उसी प्रकार से धातकी खण्ड में पुष्करार्ध में उन्हीं-उन्हीं नाम के दूने-दूने क्षेत्र, पर्वत, नदियां एवं मेरु आदि हैं।

विदेह क्षेत्र का विशेष वर्णन

जंबूद्वीप के बीच में सुमेरु पर्वत है। इसके दक्षिण में निषध पर्वत और उत्तर में नील पर्वत है। यह मेरु विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में है। निषध पर्वत से सीतोदा और नील पर्वत से सीता नदी निकली है। सीतोदा नदी पश्चिम समुद्र में और सीता नदी पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है। इसलिये इनसे विदेह के ४ भाग हो गये हैं। दो भाग मेरु के एक ओर और दो भाग मेरु के दूसरी ओर। एक-एक विदेह में ४-४ वक्षार पर्वत और ३-३ विभंग नदियां होने से १-१ विदेह के आठ--आठ भाग हो गये हैं।

इन चार विदेहों के बत्तीस भाग (विदेह) हो गये हैं। ये

बत्तीस विदेह क्षेत्र जंबूद्वीप के १ मेरु संबंधि हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप के ५ मेरु संबंधी ३२×५=१६० विदेह क्षेत्र होते हैं।

१७० कर्म भूमि का वर्णन

इस प्रकार १६० विदेह क्षेत्रों मे १-१ विजयार्ध एवं गंगा-सिंधु तथा रक्ता-रक्तोदा नाम की २-२ नदियों मे ६-६ खण्ड होते हैं जिनमें मध्य का आर्य खण्ड एवं शेष पांचों म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं।

पांच मेरु सम्बन्धी ५ भरत, ५ ऐरावत और ५ महाविदेहों के १६० विदेह:—५+५+१६०=१७० हुये। ये १७० ही कर्म भूमियां हैं।

एक राजू चौड़े इस मध्य लोक में असंख्यातों द्वीप समुद्र हैं। उनके अन्तर्गत ढाई द्वीप की १७० कर्म भूमियों में ही मनुष्य तपश्चरणादि के द्वारा कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये ये क्षेत्र कर्म भूमि कहलाते हैं।

इन क्षेत्रों में काल परिवर्तन का क्रम

भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में पहले काल से लेकर छठे काल तक क्रम से परिवर्तन होता रहता है। वह दो भेद रूप हैं, अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी।

अवसर्पिणी—(१) सुषमा सुषमा (२) सुषमा (३) सुषमा दुषमा (४) दुषमा सुषमा (५) दुषमा (६) अति दुषमा

पुनः विपरीत क्रम से ही—६ काल रूप परिवर्तन होता रहता है।

उत्सर्पिणी--(६) अति दुषमा (५) दुषमा (४) दुषमा सुषमा (३) सुषमा दुषमा (२) सुषमा (१) सुषमा सुषमा।

प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय काल में क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। चतुर्थ काल से कर्म भूमि शुरू होती है। चतुर्थकाल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुषों का जन्म एवं सुख की बहुलता रहती है। पुण्यादि कार्य विशेष होते हैं एवं मनुष्य उत्तम संहनन आदि सामग्री प्राप्त कर कर्मों का नाश करते रहते हैं। पंचमकाल में उत्तम संहनन आदि पूर्ण सामग्री का अभाव एवं केवली, श्रुत केवली का अभाव होने से पंचम काल के जन्म लेने वाले मनुष्य इसी भव से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

१६० विदेह क्षेत्रों में सदैव चतुर्थकाल के प्रारंभवत् सब व्यवस्था रहती है।

भरत, ऐरावत क्षेत्रों में जो विजयार्ध पर्वत हैं उनमें जो विद्याधरों की नगरियां हैं एवं भरत, ऐरावत, क्षेत्रों में जो ५-५ म्लेच्छ खण्ड हैं उनमें चतुर्थ काल के आदि से अन्त तक जैसा परिवर्तन होता है वैसा ही परिवर्तन होता रहता है।

३० भोग भूमियां

सुमेरु पर्वत के ठीक उत्तर में उत्तर कुरु और दक्षिण में देव

कुरु है। ये उत्तर कुरु, देव कुरु उत्तम भोग भूमि हैं। हरिक्षेत्र एवं रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था है तथा हैरण्यवत, हैमवत क्षेत्र में जघन्य भोग भूमि है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप की १ मेरु सम्बन्धी ६ भोग भूमियां हैं।

इसी प्रकार धातकी खण्ड की २ मेरु सम्बन्धी १२ तथा पुष्करार्ध की २ मेरु सम्बन्धी १२ इस प्रकार--ढाई द्वीप की पांचों मेरु सम्बन्धी--६+१२+१२=३० भोग भूमियां हैं।

जहां पर १० प्रकार के कल्प वृक्षों के द्वारा उत्तम-उत्तम भोगोपभोग सामग्री प्राप्त होती है उसे भोग भूमि कहते हैं।

जंबूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय

जंबूद्वीप में ७८ अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं यथा–सुमेरू पर्वत संबंधि १६ चैत्यालय हैं।

सुमेरू पर्वत की विदिशा में ४ गज दंत के ४ चैत्यालय हैं।

हिमवदादि षट् कुलाचल के ६ चैत्यालय हैं।

विदेह के १६ वक्षार पर्वतों के १६ चैत्यालय हैं।

३२ विदेहस्थ विजयार्ध के ३२ चैत्यालय हैं।

भरत, ऐरावत के २ विजयार्ध के २ चैत्यालय हैं।

देवकुरु, उत्तर कुरु के जंबू, शाल्मलि २ वृक्षों के २ चैत्यालय हैं।

इस प्रकार १६+४+६+१६+३२+२+२=७८ जिन चैत्यालय जम्बूद्वीप संबंधि हैं।

मध्यलोक के संपूर्ण अकृत्रिम चैत्यालय

जंबूद्वीप के समान ही धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में २-२ मेरु के निमित्त से सारी रचना दूनी-दूनी होने से चैत्यालय भी दूने-दूने हैं धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में २-२ इष्वाकार पर्वत पर २-२ चैत्यालय हैं। मानुषोत्तर पर्वत पर चारों ही दिशाओं के ४ चैत्यालय हैं। आठवें नंदीश्वर द्वीप की चारों दिशाओं के ५२ चैत्यालय हैं। ग्यारहवें कुण्डलवर द्वीप में स्थित कुण्डलवर पर्वत पर ४ दिशा संबंधी ४ चैत्यालय हैं।

तेरहवें रूचकवर द्वीप में स्थित रूचकवर पर्वत पर चार दिशा संबंधी ४ चैत्यालय हैं। इस प्रकार ४५८ चैत्यालय होते हैं। यथा—

जंबूद्वीप में	७८	चैत्यालय
धातकी खण्ड में	१५६	,,
पुष्करार्ध	१५६	,,
धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में स्थित इष्वाकार पर्वतों पर	४	,,
मानुषोत्तर पर्वत पर	४	,,
नंदीश्वर द्वीप में	५२	,,
कुण्डलगि पिर	४	,,
रूचकवरगिरि	४	,,

७८+१५६+१५६+४+४+५२+४+४=४५८ चैत्यालय हैं। इन मध्यलोक संबंधी ४५८ चैत्यालयों को एवं उनमें स्थित सर्व जिन प्रतिमाओं को मैं मन वचनकाय से नमस्कार करता हूं।

ढाई द्वीप के बाहर स्थित ज्योतिष्क देवों का वर्णन

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर जो असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं उनमें न तो मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं और न वहां जा ही सकते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत से परे (बाहर) आधा पुष्कर द्वीप ८ लाख योजन का है। इस पुष्करार्ध में १२६४ सूर्य एवं इतने ही (१२६४) चन्द्रमा हैं। अर्थात्—मानुषोत्तर पर्वत से आगे ५०००० योजन की दूरी पर प्रथम वलय है। इस प्रथम वलय की सूची[1] का विस्तार ४६००००० योजन है। उसकी परिधि १,४५,४६,४७७ योजन प्रमाण है।

इस प्रथम वलय में (अभ्यन्तर पुष्करार्ध में ७२ से दुगुने)

१. पुष्करार्ध के प्रथम वलय के इस ओर से बीच में जंबूद्वीप आदि को करके उस ओर तक के पूरे माप को सूची व्यास कहते हैं। यथा—मानुषोत्तर पर्वत के इस ओर से उस ओर तक ४५ लाख एवं ५० हजार इधर व ५० हजार उधर का मिलाकर ४६ लाख होता है।

१४४ सूर्य एवं १४४ चन्द्रमा हैं। इस प्रथम वलय की परिधि में १४४ का भाग देने से सूर्य से सूर्य का अन्तर प्राप्त होता है। यथा—१४५४६४७७ ÷ १४४ = १०१०१७$\frac{२९}{१४४}$ योजन है। इसमें से सूर्य बिंब और चन्द्र बिंब के प्रमाण को कम कर देने पर उनका बिंब रहित अन्तर इस प्रकार प्राप्त होता $\frac{४८}{६१}$ × १४४ = $\frac{६९१२}{८७८४}$, १०१०१७$\frac{२९}{१४४}$ − $\frac{६९१२}{८७८४}$ = १०१०१६$\frac{३६४१}{८७८४}$ योजन एक सूर्य बिंब से दूसरे सूर्य का अन्तर है।

इस प्रकार पुष्करार्ध में ८ वलय हैं। प्रथम वलय से १ लाख योजन जाकर दूसरा वलय है। इस दूसरे वलय में प्रथम वलय के १४४ से ४ सूर्य अधिक हैं। इसी प्रकार आगे के ६ वलयों में ४–४ सूर्य एवं ४–४ चन्द्र अधिक २ होते गये हैं। जिस प्रकार प्रथम वलयसे १ लाख योजन दूरी पर द्वितीय वलय है। उसी प्रकार १–१ लाख योजन दूरी पर आगे-आगे के वलय हैं। इस प्रकार क्रम से सूर्य, चन्द्रों की संख्या भी बढ़ती गई है। जिस प्रकार प्रथम वलय मानुषोत्तर पर्वत से ५० हजार योजन पर है उसी प्रकार अन्तिम वलय से पुष्करार्ध की अन्तिम वेदी ५० हजार योजन पर है बाकी मध्य के सभी वलय १–१ लाख योजन के अन्तर से हैं।

प्रथम वलय में १४४, दूसरे में १४८, तीसरे में १५२, इस प्रकार ४–४ बढ़ते हुये अन्तिम वलय में १७२ सूर्य एवं १७२ चंद्रमा हैं। इस प्रकार पुष्करार्ध के आठों वलयों के कुल मिलाकर १२६४ सूर्य एवं १२६४ चंद्रमा हैं। ये गमन नहीं करते हैं,

अपनी-अपनी जगह पर ही स्थित हैं। इसलिये वहाँ दिन रात का भेद नहीं दिखाई देता है।

पुष्करवर समुद्र के सूर्य चन्द्रादिक

पुष्करवर द्वीप को घेरे हुये पुष्करवर समुद्र ३२ लाख योजन का है। इसमें प्रथम वलय पुष्करवर द्वीपकी वेदी से ५०००० योजन आगे है। इस प्रथम वलय से १–१ लाख योजन की दूरी पर आगे-आगे के वलय हैं। अंतिम वलय से ५०००० योजन जाकर समुद्र की अन्तिम तट वेदी है।

इस पुष्करवर समुद्र में ३२ वलय हैं। प्रथम वलय में २५२८ सूर्य एवं इतने ही चंद्रमा हैं। अर्थात् बाह्य पुष्कर द्वीप के कुल मिलकर १२६४ सूर्य थे उसके दुगुने २५२८ होते हैं। अगले समुद्र के प्रथम वलय में दूने होते हैं। पुनः प्रत्येक वलयों में ४-४ सूर्य-चंद्र बढ़ते गये हैं। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते अन्तिम बत्तीसवें वलय में २६५२ सूर्य एवं २६५२ चंद्रमा होते हैं। पुष्करवर समुद्र के ३२ वलयों के सभी सूर्यों का जोड़ ८२८८० है एवं चन्द्र भी इतने ही हैं।

असंख्यात द्वीप समुद्रों में सूर्य चन्द्रादिक

इसी प्रकार आगे के द्वीप में ८२८८० से दूने सूर्य, चंद्र प्रथम वलय में हैं और आगे के वलयों में ४–४ से बढ़ते जाते हैं। वलय भी ३२ से दूने ६४ हैं।

पुनः इस द्वीप में ६४ वलयों के सूर्यों को जो संख्या है उससे दुगुने अगले समुद्र के प्रथम वलय में होंगे। पुनः ४–४ की वृद्धि से बढ़ते हुये अन्तिम वलय तक जायेंगे। वलय भी पूर्व द्वीप से दूगुने ही होंगे। इस प्रकार यही क्रम आगे के असंख्यात द्वीप समुद्रों में सर्वत्र अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्र तक जानना चाहिये।

मानुषोत्तर पर्वत से आगे के (स्वयंभूरमण समुद्र तक) सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमान अपने-अपने स्थानों पर ही स्थिर हैं, गमन नहीं करते हैं।

इस प्रकार असंख्यात द्वीप समुद्रों में असंख्यात द्वीप समुद्रों की संख्या से भी अत्यधिक असंख्यातों सूर्य, चन्द्र हैं एवं उनके परिवार देव-ग्रह, नक्षत्र, तारागण आदि भी पूर्ववत् एक चन्द्र की परिवार संख्या के समान ही असंख्यातों हैं। इन सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमानों में प्रत्येक में १–१ जिन मंदिर है। उन असंख्यात जिन मंदिर एवं उनमें स्थित सभी जिन प्रतिमाओं को मेरा मन वचन काय से नमस्कार हो।

ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति के कारण

देव गति के ४ भेद हैं—भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिर्वासी एवं वैमानिक। सम्यग्दृष्टि जीव वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिक (भवन, व्यन्तर, ज्योतिष्क देव) में उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि ये जिनमत के विपरीत धर्म को पालने वाले हैं, उन्मार्गचारी हैं, निदान

पूर्वक मरने वाले हैं, अग्निपात, झंझापात आदि से मरने वाले हैं, अकाम निर्जरा करने वाले हैं, पंचाग्नि आदि कुतप करने वाले हैं या सदोष चारित्र पालने वाले हैं एवं सम्यग्दर्शन से रहित ऐसे जीव इन ज्योतिष्क आदि देवों में उत्पन्न होते हैं।

ये देव भी भगवान के पंचकल्याणक आदि विशेष उत्सवों के देखने से या अन्य देवों की विशेष ऋद्धि (विभूति) आदि देखने से या जिनबिंब दर्शन आदि कारणों से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकते हैं तथा अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा एवं भगवान के पंचकल्याणक आदि में आकर महान पुण्य का संचय भी कर सकते हैं। अनेक प्रकार की अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों से युक्त इच्छानुसार अनेक भोगों का अनुभव करते हुये यत्र-तत्र क्रीड़ा आदि के लिये परिभ्रमण करते रहते हैं। ये देव तीर्थङ्कर देवों के पंच कल्याणक उत्सव में या क्रीड़ा आदि के लिये अपने मूल शरीर से कहीं भी नहीं जाते हैं। विक्रिया के द्वारा दूसरा शरीर बनाकर ही सर्वत्र जाते आते हैं।

यदि कदाचित् वहां पर सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त कर पाते हैं तो मिथ्यात्व के निमित्त से मरण के ६ महिने पहले से ही अत्यंत दुःखी होने से आर्तध्यान पूर्वक मरण करके मनुष्य गति में या पंचेन्द्रिय तिर्यन्चों में जन्म लेते हैं। यदि अत्यधिक संक्लेश परिणाम से मरते हैं तो एकेन्द्रिय–पृथ्वी, जल, वनस्पतिकायिक आदि में भी जन्म ले लेते है।

किन्तु यदि सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर मरते हैं तो शुभ परिणाम से मरकर मनुष्य भव में आकर दीक्षा आदि उत्तम पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं।

देवगति में संयम को धारण नहीं कर सकते हैं एवं संयम के बिना कर्मों का नाश नहीं होता है। अतः मनुष्य पर्याय को पाकर संयम को धारण करके कर्मों के नाश करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस मनुष्य जीवन का सार संयम ही है।

योजन एवं कोस बनाने की विधि

पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी टुकड़े को परमाणु कहते हैं।

ऐसे अनंतानंत परमाणुओं का	१ अवसन्नासन्न
८ अवसन्नासन्न का	१ सन्नासन्न
८ सन्नासन्न का	१ त्रुटिरेणु
८ त्रुटिरेणु का	१ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु का	१ रथरेणु
८ रथरेणु का	उत्तम भोग भूमियों के बाल का १ अग्र भाग
उत्तम भोग भूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	मध्यम भोग भूमियों के बाल का १ अग्र भाग
मध्यम भोग भूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	जघन्य भोग भूमियोंके बाल का १ अग्र भाग

जघन्य भोग भूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	कर्म भूमियों के बाल का १ अग्र भाग
कर्म भूमियां के बाल के ८ अग्र भागों को	१ लीख
आठ लीख का	१ जूं
८ जूं का	१ जव
८ जव का	१ अंगुल

इसे ही उत्सेधांगुल कहते हैं। इस उत्सेधांगुल का ५०० गुणा प्रमाणांगुल होता है।

६ उत्सेध अंगुल का	१ पाद
२ पाद का	१ बालिस्त
२ बालिस्त ,,	१ हाथ
२ हाथ ,,	१ रिक्कू
२ रिक्कु ,,	१ धनुष
२००० धनुष का	१ कोस
४ कोस का	१ लघु योजन
५०० योजन का	१ महा योजन

२००० धनुष का १ कोस है। अतः १ धनुष में ४ हाथ होने से

८००० हाथ का १ कोस हुआ एवं १ कोस में २ मील मानने से ४००० हाथ का १ मील होता है।

एक महायोजन में २००० कोस होते हैं। एक कोस में २ मील मानने से १ महायोजन में ४००० मील हो जाते हैं। अतः ४००० मील के हाथ बनाने के लिए १ मील सम्बन्धी ४००० हाथ से गुणा करने पर ४०००×४०००=१६,०,००,००० अर्थात् एक महायोजन में १ करोड़ साठ लाख हाथ हुये।

वर्तमान में रैखिक माप में १७६० गज का १ मील मानते हैं। यदि १ गज में २ हाथ माने तो १७६०×२=३५२० हाथ का १ मील हुआ। पुनः उपर्युक्त एक महायोजन के हाथ १,६०,००,००० में ३५२० हाथ का भाग देने से १६०००००० ÷३५२०=४५४५ $\frac{५}{११}$ आये। इस तरह एक महायोजन में वर्तमान माप से ४५४५ $\frac{५}{११}$ मील हुये।

परन्तु इस पुस्तक में हमने स्थूल रूप से व्यवहार में १ कोस में २ मील की प्रसिद्धि के अनुसार सुविधा के लिये सर्वत्र महायोजन के २००० कोस को २ मील से गुणा कर एक महायोजन के ४००० मील मानकर उसी से ही गुणा किया है।

जैन सिद्धांत में ४ कोस का लघु योजन एवं २००० कोस का महायोजन माना है। ज्योतिर्बिम्ब और उनकी ऊंचाई आदि का वर्णन महायोजन से ही माना है।

भूभ्रमण का खंडन

(श्लोकवार्तिक तीसरी अध्याय के प्रथम सूत्र की हिंदी से)

कोई आधुनिक विद्वान कहते हैं कि जैनियों की मान्यता के अनुसार यह पृथ्वी वलयाकार चपटी गोल नहीं है। किंतु यह पृथ्वी गेंद या नारंगी के समान गोल आकार की है। यह भूमि स्थिर भी नहीं है। हमेशा ही ऊपर नीचे घूमती रहती है तथा सूर्य, चन्द्र, शनि, शुक्र आदि ग्रह, अश्विनी, भरिणी आदि नक्षत्रचक्र, मेरू के चारों तरफ प्रदक्षिणा रूप अवस्थित है, घूमते नहीं हैं। यह पृथ्वी एक विशेष वायु के निमित्त से ही घूमती है। इस पृथ्वी के घूमने से ही सूर्य, चंद्र, नक्षत्र आदि का उदय, अस्त आदि व्यवहार बन जाना है इत्यादि।

दूसरे कोई वादी पृथ्वी का हमेशा अधोगमन ही मानते हैं एवं कोई २ आधुनिक पंडित अपनी बुद्धि में यों मान बैठे हैं कि पृथ्वी दिन पर दिन सूर्य के निकट होती चली जा रही है। इसके विरुद्ध कोई २ विद्वान प्रतिदिन पृथ्वी को सूर्य से दूरतम होती हुई मान रहे हैं। इसी प्रकार कोई २ परिपूर्ण जल भाग से पृथ्वी को उदित हुई मानते हैं।

किंतु उक्त कल्पनायें प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं होती हैं। थोड़े ही दिनों में परस्पर एक दूसरे का विरोध करने वाले विद्वान खड़े हो जाते हैं और पहले-पहले के विज्ञान या ज्योतिष

यंत्र के प्रयोग भी युक्तियों द्वारा बिगाड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार छोटे २ परिवर्तन तो दिन रात होते ही रहते हैं।

इसका उतर जैनाचार्य इस प्रकार देते हैं—

भूगोल का वायु के द्वारा भ्रमण मानने पर तो समुद्र, नदी, सरोवर आदि के जल की जो स्थिति देखी जाती है उसमें विरोध आता है।

जैसे कि पाषाण के गोले को घूमता हुआ मानने पर अधिक जल ठहर नहीं सकता है। अतः भू अचला ही है। भ्रमण नहीं करती है। पृथ्वी तो सतत घूमती रहे और समुद्र आदि का जल सर्वथा जहां का तहां स्थिर रहे, यह बन नहीं सकता। अर्थात् गंगा नदी जैसे हरिद्वार से कलकत्ता की ओर बहती है, पृथ्वी के गोल होने पर उल्टी भी बह जायेगी। समुद्र और कुओं के जल गिर पड़ेंगे। घूमती हुई वस्तु पर मोटा अधिक जल नहीं ठहर कर गिरेगा ही गिरेगा।

दूसरी बात यह है कि—पृथ्वी स्वयं भारी है। अधःपतन स्वभाव वाले बहुत से जल, बालू रेत आदि पदार्थ हैं जिनके ऊपर रहने से नारंगी के समान गोल पृथ्वी हमेशा घूमती रहे और यह सब ऊपर ठहरे रहें, पर्वत, समुद्र, शहर, महल आदि जहां के तहां बने रहें यह बात असंभव है।

यहां पुनः कोई भूभ्रमणवादी कहते हैं कि घूमती हुई इस

गोल पृथ्वी पर समुद्र आदि के जल को रोके रहने वाली एक वायु है जिसके निमित्त से समुद्र आदि ये सब जहां के तहां ही स्थिर बने रहते हैं।

इस पर जैनाचार्यों का उत्तर---जो प्रेरक वायु इस पृथ्वी को सर्वदा घुमा रही है, वह वायु इन समुद्र आदि को रोकने वाली वायु का घात नहीं कर देगी क्या ? वह बलवान प्रेरक वायु तो इस धारक वायु को घुमाकर कहीं की कहीं फेंक देगी। सर्वत्र ही देखा जाता है कि यदि आकाश में मेघ छाये हैं और हवा जोरों से चलती है, तब उस मेघ को धारण करने वाली वायु को विध्वंस करके मेघ को तितर बितर कर देती है, वे बेचारे मेघ नष्ट हो जाते हैं, या देशांतर में प्रयाण कर जाते हैं।

उसी प्रकार अपने बलवान वेग से हमेशा भूगोल को सब तरफ से घुमाती हुई जो प्रेरक वायु है। वह वहां पर स्थिर हुये समुद्र, सरोवर आदि को धारने वाली वायु को नष्ट भ्रष्ट कर ही देगी। अतः बलवान प्रेरक वायु भूगोल को हमेशा घुमाती रहे और जल आदि की धारक वायु वहां बनी रहे, यह नितांत असंभव है।

पुनः भूभ्रमणवादी कहते हैं कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। अतएव सभी भारी पदार्थ भूमि के अभिमुख होकर ही गिरते हैं। यदि भूगोल पर से जल गिरेगा तो भी वह पृथ्वी की ओर ही गिरकर वहां का वहां ही ठहरा रहेगा। अतः वह समुद्र आदि अपने २ स्थान पर ही स्थिर रहेंगे।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि---आपका कथन ठीक नहीं

है। भारी पदार्थों का तो नीचे की ओर गिरना ही दृष्टिगोचर हो रहा है। अर्थात्---पृथ्वी में १ हाथ का लम्बा चौड़ा गड्ढा करके उस मिट्टी को गड्ढे की एक ओर ढलाऊ ऊंची कर दीजिये। उस पर गेंद रख दीजिये, वह गेंद नीचे की ओर गड्ढे में ही ढुलक जायेगी। जबकि ऊपर भाग में मिट्टी अधिक है तो विशेष आकर्षण शक्ति के होने से गेंद को ऊपर देश में ही चिपकी रहना चाहिये था, परन्तु ऐसा नहीं होता है। अतः कहना पड़ता है कि भले ही पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होवे, किन्तु उस आकर्षण शक्ति की सामर्थ्य से समुद्र के जलादिकों का घूमती हुई पृथ्वी से तिरछा या दूसरी ओर गिरना नहीं रुक सकता है।

जैसे कि प्रत्यक्ष में नदी, नहर आदि का जल ढलाऊ पृथ्वी की ओर ही यत्र तत्र किधर भी बहता हुआ देखा जाता है और लोहे के गोलक, फल आदि पदार्थ स्वस्थान से च्युत होने पर (गिरने पर) नीचे की ओर ही गिरते हैं।

इस प्रकार जो लोग आर्य भट्ट या इटली, यूरोप आदि देशों के वासी विद्वानों की पुस्तकों के अनुसार पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करते हैं और उदाहरण देते हैं कि---जैसे अपरिचित स्थान में नौका में बैठा हुआ कोई व्यक्ति नदी पार कर रहा है। उसे नौका तो स्थिर लग रही है और तीरवर्ती वृक्ष मकान आदि चलते हुए दिख रहे हैं। परन्तु यह भ्रम मात्र है, तद्वत् पृथ्वी की स्थिरता की कल्पना भी भ्रम मात्र है।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि—साधारण मनुष्य को भी थोड़ासा ही घूम लेने पर आंखों में घूमनी आने लगती है, कभी २ खण्ड देश में अत्यल्प भूकम्प आने पर भी शरीर में कपकपी, मस्तक में भ्रांति होने लग जाती है। तो यदि डाक गाड़ी के वेग से भी अधिक वेग रूप पृथ्वी की चाल मानी जायेगी, तो ऐसी दशा में मस्तक, शरीर, पुराने गृह, कूपजल आदि की क्या व्यवस्था होगी।

बुद्धिमान स्वयं इस बात पर विचार कर सकते हैं।

सूर्य–चन्द्र के बिंब की सही संख्या का स्पष्टीकरण

सर्वत्र ज्योतिर्लोक का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, लोकविभाग, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, आदि ग्रन्थों में सूर्य के विमान $\frac{४८}{६१}$ योजन व्यास वाले एवं इससे आधे $\frac{२४}{६१}$ योजन की मोटाई के हैं और चन्द्र विमान $\frac{५६}{६१}$ योजन व्यास वाले एवं $\frac{२८}{६१}$ योजन की मोटाई वाले हैं।

परन्तु राजवार्तिक ग्रन्थ जो कि ज्ञानपीठ से प्रकाशित है उसके हिन्दी टीकाकार प्रोफेसर महेन्द्रकुमारजी ने उसमें हिन्दी में ऐसा लिख दिया है कि—सूर्य के विमान की लम्बाई ४८$\frac{१}{६०}$ योजन है तथा चौड़ाई २४$\frac{१}{६०}$ योजन है। उसी प्रकार चन्द्र के विमान की लम्बाई ५६$\frac{१}{६०}$ योजन है और चौड़ाई २८$\frac{१}{६०}$ योजन है। यह नितान्त गलत है।

राजवार्तिक की मूल संस्कृत में चतुर्थ अध्याय के १२ वें सूत्र में—सूर्य, चन्द्र के विमान का वर्णन करते हुये "**अष्टचत्वारिंश-द्योजनैकषष्टि भागविष्कंभायामानि तत्त्रिगुणाधिकपरिधीनि चतुर्विंशतियोजनैकषष्टिभागबाहुल्यानि अर्धगोलकाकृतीनि**" इत्यादि अर्थात्—यह सूर्य के विमान एक योजन के इकसठ भाग में से अड़तालीस भाग प्रमाण आयाम वाले कुछ अधिक त्रिगुणी परिधि वाले एक योजन के इकसठ भाग में से २४ भाग वाहल्य (मोटाई) वाले अर्ध गोलक के समान आकार वाले हैं। ४८/६१ व्यास । २४/६१ मोटाई ।

उसी प्रकार चन्द्र के विमान के वर्णन में—"**चन्द्रविमानानि षट्पंचाशत् योजनैकषष्टिभागविष्कंभायामानि अष्टाविंशति-योजनैकषष्टिभागबाहुल्यानि**" इत्यादि । अर्थात्—चन्द्र के विमान एक योजन के ६१ भाग में से ५६ भाग प्रमाण व्यास वाले एवं एक योजन के ६१ भाग में से २८ भाग मोटाई वाले हैं । ५६/६१ व्यास । २८/६१ मोटाई ।

इसी प्रकार की पंक्ति को रखकर स्वयं ही विद्यानंद स्वामी ने श्लोक-वार्तिक में उसका अर्थ ४८/६१ योजन मानकर उसे लघु योजन बनाने के लिये पांच सौ से गुणा करके कुछ अधिक ३९३ की संख्या निकाली है । देखिये—श्लोकवार्तिक अध्याय तीसरी का सूत्र १३ वां ।

प० पू० १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज

जन्म —	क्षुल्लक दीक्षा	मुनि दीक्षा
गम्भीरा (राज०)	आ०कल्प श्री चन्द्रसागरजी से	आ० श्री वीरसागरजी से
वि० सं० १९७०	बालूज (औरंगाबाद, महाराष्ट्र)	फुलेरा (राज०)
पौष शुक्ला १५	वि०सं० २००० चैत्र कृष्णा ७	वि.सं. २००८ का.शु. १४

आचार्यपद — फाल्गुन शुक्ला ८ वि०सं० २०२५ — श्रीमहावीरजी

"अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागत्वात् प्रमाणयोजनापेक्षया सातिरेकत्रिनवतिशतत्रयप्रमाणत्वादुत्सेधयोजनापेक्षया दूरोदयत्वाच्च स्वाभिमुखलंबीहुप्रतिभाससिद्धेः" ।

अर्थ—बड़े माने गये प्रमाण योजन की अपेक्षा एक योजन के इकसठ भाग प्रमाण सूर्य है। चूंकि चार कोस के छोटे योजन से पांचसौ गुणा बड़ा योजन होता है। अतः अड़तालीस को पांचसौ से गुणा करने पर और इकसठ का भाग देने से ३९३$\frac{२७}{६१}$ प्रमाण छोटे योजन से सूर्य होता है।

इस प्रकार ३९३$\frac{२७}{६१}$ योजन का सूर्य होता है। और उगते समय यहां से हजारों (बड़े) योजनों दूर सूर्य का उदय होने से व्यवहित हो रहे मनुष्यों के भी अपने-अपने अभिमुख आकाश में लटक रहे देदीप्यमान सूर्य का प्रतिभासपना सिद्ध है। इत्यादि।

इस प्रकार विद्यानंद स्वामी ने **"अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभाग"** का अर्थ $\frac{४८}{६१}$ योजन करके इसे महायोजन मान कर ५०० से गुणा करके कुछ अधिक ३९३ प्रमाण लघु योजन बनाया है। इसकी हिन्दी भी पं० माणिकचंदजी ने इसी के अनुसार की है। जबकि प्रो० महेन्द्रकुमारजी इस पंक्ति का अर्थ ४८$\frac{१}{६०}$ योजन कर गये हैं। यदि इस संख्या में लघु योजन करने के लिये ५०० का गुणा करें तो—४८$\frac{१}{६०}$×५००=२४०८$\frac{१}{३}$ संख्या आती है जो कि अमान्य है। तथा यदि $\frac{४८}{६१}$ में पांच सौ का गुणा करें तो $\frac{४८}{६१}$×५००=३९३$\frac{२७}{६१}$ प्रमाण सही संख्या प्राप्त होती है जो कि श्री विद्यानंद स्वामी ने निकाली है। इसलिये कोई विद्वान्

ऐसा कहते हैं कि सूर्य बिंब चन्द्र बिंब के प्रमाण में जैनाचार्यों के दो मत हैं। यह बात गलत है हिन्दी गलत होने से दो मत नहीं हो सकते हैं। जैनाचार्यों के सभी शास्त्रों में सूर्य बिंब, चन्द्र बिंब आदि के विषय में एक ही मत है इसमें विसंवाद नहीं है।

ज्योतिर्लोक सम्बन्धि ज्योतिर्वासी देवों का सामान्यतया वर्णन समाप्त हुआ, विशेष जानकारी के लिए इस विषय संबंधि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए।

इस लघु पुस्तिका में महान् ग्रन्थों का सार रूप संकलन मैंने अपनी अल्प बुद्धि से मात्र गुरु के प्रसाद से ही प्रस्तुत किया है। पाठक गण ! सच्चे देव शास्त्र गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा को दृढ़ रखते हुए उनकी वाणी पर निःशंक विश्वास करके सम्यक-दृष्टि बनकर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति करें। यही शुभ भावना है।